एकादशस्कन्ध
भाषाटीका.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते

एकादशस्कन्धः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीबादरायणिरुवाच॥
कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽ-
वतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

दोहा—ब्रह्म सच्चिदानंदघन, व्यापक हरि सब ठौर ॥
धरिये ताका ध्यान जो, माया को शिर मौर ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ पहिले दशमस्कंधमें भक्तनके उद्धारिवेको भूभार हरणको प्रगट भये श्रीकृष्णचंद्रकी लीला कही, अब एकादशस्कंधमें भक्तनको उपदेश और पूजामार्ग भक्तिमार्गको फल निर्णय करि कहैंगे, और सब भक्तनको अपने स्थानको प्राप्त करैंगे, ऐसी भांति या एकादशस्कंधमें मुक्तिलीला कहैं जे तहां पहिले कुरुक्षेत्रमें वसुदेव नारदसो कर्मयोग पूंछत भये, तब नारद कर्मयोग सब कहत भये, ताते चित्त शुद्ध भयो, जब वसुदेवजीको ज्ञान उत्पन्न भयो अर्थात् श्रीकृष्ण राम ये दोऊ साक्षात् ईश्वर हैं सो फिर वह ज्ञान रह्यो नहीं, तातें फेरि ब्रह्मज्ञान नारदसों पूछेंगे तब नारद पांच अध्याय

दोहा—मंगलमूरति सुखकरन, दुःखहरन यदुवीर ॥ कृपा करहु जन जान निज, सुंदर श्यामशरीर ॥ १ ॥ एकादशस्कंध यह, ज्ञानकाण्डको सार ॥ शुद्ध कियो कल्याणहित, कछु निजमति अनुसार ॥ २ ॥ कहत प्रथमअध्यायमें, यादवकुलको शाप ॥ मुसल भयो जिमि सांबके, प्रजहि भयो परिताप ॥ ३ ॥

ये कोपिता सुबहुपाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान्॥ कृत्वानिमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभाररराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

करि वर्णन करैंगे, तहां पहिले अध्यायमें वैराग्य उपजायवेके कारण यदुकुलको ब्रह्मशापके मिष करिकै विषयसुखको अनित्य कहैं हैं पीछे चारि अध्यायन करि राजा जनकको और नव योगीश्वरनको संवाद कहैंगे, तामें परमतत्व निरूपण करैंगे, छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण उद्धवको संगम कहैंगे, पीछे तेईस अध्यायन करि उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्व निरूपण करैंगे, पीछे द्वै अध्यायकरि यादवनको संहार कहैंगे, या भांति इकतीस अध्याय करि एकादशस्कंध कहैंगे, तहां पहिले पूर्वस्कंधकी कथा सुधि करिकै शुकदेवजी आरंभ करैं हैं, दैत्यनको वध करि श्रीकृष्ण बलदेवजी मिलि करिकै यादव सहित कौरव पांडवनमें शीघ्र कलह उत्पन्न करि पृथ्वीको भार उतारत भये ॥ १ ॥ जे पांडुके पुत्र शत्रुनसो बहुत कोपित कराये गये, कपटयुक्त जूआ खेल जिनको राज्य लियो अवज्ञा करि द्रौपदीके केश ग्रहण किये, तिनहीको निमित्त करि दोउ पक्षमें मिले राजानको मारिकैं पृथिवीको भार उतारते भये ॥ २ ॥ अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण फिर विचारने लगे कि यद्यपि मैंने भूमिको भाररूप राजसेना अपनें बाहुसों पालित यादवनसों नाश कराई तोहू भूमिको भार न गयो, क्यों कि जो अभी यदुकुल बडो अनंत बाकी है, यह बडो भार है यासो ग्या गये भारको नहीं गयेकी तरह मानो हौ ॥ ३ ॥

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥४॥एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः॥५॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः॥ ७ ॥

जाकें मैं आश्रय हों ताकों पराजय तो औरतें न होइ और ये तो सब यादव वैभव करि उद्धत भये हैं तातें इनमें आपुसमें कलह उपजाइकें जैसें बांसनके वनमें रगडसों उपजी आगि बांसनको जलायके शांत होय है ऐसैंही यादवनमें क्लेश उत्पन्न कर इनकौ संहार करके शांतिको प्राप्त हेके अपने धामको पधारूंगो ॥४॥ हे राजन् ! या प्रकार बुद्धिसों निश्चय करि सत्यसंकल्प ईश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्मशापके मिषसों अपनो कुलसंहार करत भये ॥५॥ जाके समान लोकमें कोई सुंदर नहीं जाके निमित्तसों लोक शोभाको प्राप्त होय हैं ऐसे अपने शरीरसों भक्तजननके नेत्रनको अपनेमें आसक्त कर तथा अपने मनोहर वचनसों विन वचननके स्मरण करनवारे लोकनको चित्त आकर्षण कर रजसो चिह्नित अपने पदकमलनके अवलोकन करनवारे प्राणिनकी अन्य स्थाननमें जायवेकी चेष्टाको रोककर समयमें उत्पन्न होनवारे प्राणी याही अवलम्बसों संसारके पार हैजायगे ऐसो विचार कर पुण्यात्मानमें धारण करी जाय ऐसी अपनी कीर्तिको पृथ्वीमें फैलायके श्रीकृष्ण अपने धामको पधारे ॥ ६ ॥ ७ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसे-
विनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेत-
साम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजस-
त्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माऽऽचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः॥आस्थाय धाम
रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृ-
त्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि
गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना
निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो
विसृष्टाः ॥ ११ ॥

परीक्षित् बोले हे शुकदेवजी हे प्रभो ! जे यादव अतिब्रह्मण्य अतिदांत सत्यवक्ता नित्य वृद्धनकी सेवा करनवारे सदा कृष्णमें मन लगाये रहैं हैं विनको ब्राह्मणनको शाप कैसे भयो ॥ ८ ॥ जिनको मन श्रीकृष्णमें लगो हो विनकों ब्राह्मणनको कोप होय है शाप लगानो नहीं चाहिये तौ यह यादवनकों शाप कैसे लगो हे शुक देवजी ! यह शाप जा कारणसौ भयो और सम्मतिसौ रहने-वाले यादवनमें भेद कैसे भयो सो हमसौ कहो ॥ ९ ॥ शुकदेवजी बोले पहिलें भक्तनके सुख देवेके अर्थ भगवान्नै सकल सुंदरतानि-धान स्वरूप धर अत्यंत मंगलकर्म भूमिमें किये, यद्यपि आप पूर्ण-काम हैं तथापि फेरि द्वारकामें धाम करि क्रीडा करते सब भक्तनको सुख दियो, पहिले जीवनके उद्धारको उदार कीर्ति विस्तारी, आगे अपनें कुल संहारको इच्छा करतभये कारण कि इतनोही कृत्य बाकी रह्यो है ॥ १० ॥ भगवान्श्रीकृष्णचन्द्र जो कार्य करतेहैं वे कर्म केवल

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ॥
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥
क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ॥ उप-
संगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेष-
यित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति
वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती
साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा
किंस्वित्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥

कीर्तन करवेसौंही पुण्यके बढानेवारे सुखरूप और कीर्तन करवेवा-रनके पाप दूर करनवारे हे ऐसे कर्म करवेके निमित्त बुलाये ब्राह्मण-नको इन सब करमनसों निश्चिन्त हो श्रीकृष्णने पिंडारक नाम स्थानपर जायवेको कही तब मुनि तहां जातभये भगवान् श्रीकृष्ण कालरूप हैवेसो वसुदेवजीके घरमें रहकर अपने कुलको निर्मूल करनौ चाहतेहे याही कारण ऋषिनको पिंडारक स्थानमें भेजौ सो वे सब पिंडारकनाम तीर्थमें वे ऋषि चलेगये ॥ ११ ॥ तिन मुनिनके नाम कहैं हैं विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, नारद आदि लेकरि औरहू मुनि हैं ॥ १२ ॥ इन ऋषीश्वरनके पास सब यदुकुमार खेलत २ जाइकरिकैं पाय परि परि नमस्कार करि पूछत भये, परन्तु विनके मनमें कपटभरो हो ॥ १३ ॥ अब उन सब बालकनको प्रश्न हैं ते सब बालक जांबव-तीके पुत्र सांबको स्त्रीवेष बनाई पूछत भये, अहो मुनीश्वर ! तुम सर्वज्ञ हो यह गर्भवती है याकें पुत्रकामना है, और प्रसव होनहार है, तुमसों साक्षात् पूछत लज्जा करे है, याकें कहा होगो पुत्र या कन्या यों पूछतभये ॥ १४ ॥ १५ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयि-
ष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा
तेऽतिसन्त्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ साम्बस्य
दद्दशुस्तस्मिन्मुसलं कुलनाशनम् ॥ १७॥ किं कृतं
मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ॥ इति विह्व-
लिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय
सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः
सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा
च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वा-
रकौकसः ॥ २० ॥

याभांति छलसो यादवनके बालक पूछत भये, तिनपै कुपित होइ
मुनि बोले हे मूर्खों ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूशलकों जनेंगी
॥ १६ ॥ यह सुनि अति भयभीत भये बालक उतावलसों
सांबके उदरको खोलकारि लोहेको मूशल देख त्रासितहोत भये
॥ १७ ॥ परस्पर बोले मंदभागी हमनें यह कहा कीनो, हमसैं
मनुष्य कहा कहैंगे, या भांति विह्वल भये मूशलको ले आव-
तभये ॥ १८ ॥ उनके मुखकी शोभा अतिमलीन भई, सब बालक
वा मूशलकों सभाबीच लायके सब यादवनकें निकट राजा उग्रसे-
नसों कहतभये, परन्तु श्रीकृष्णसूं नहीं कहतभये ॥ १९ ॥ सफल
नाम खाली न जाय ऐसे शापको सुनिकैं और मुशल देखिकैं द्वार-
काके वासी अचरज मानतभये और भयभीत भये ॥ २० ॥

---

१ दोहा—अहो भाग्यकी बात जब, होत समे विपरीत ।
ताकी यह पहचान है, करत सो उलटी रीत ॥ १ ॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः॥ समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः॥उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते म० एकादशस्कन्धे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णके विना पूछे वह यादवनको राजा उग्रसेन ता मूशलको चूर्ण कराइ समुद्रके जलमें बहावत भये रेतवेते शेष जो लोहो रह्योहो सोऊ समुद्रमें डारत भये ॥ २१ ॥ कोउ मत्स्य वा लोहको निगलि गयो, और चूर्ण सब तरंगनिसौं समुद्रनें तीरपै डारि दीनो, तेई सब पटेरे उपजत भए॥ २२॥ वह मत्स्य समुद्रमें और मत्स्यनके संग धीमरने जालमें पकरचो, वाके उदरतें लोह निकस्यो, ताकी वधिकने तीरकी भाल करी ॥ २३ ॥ भगवान् ईश्वर सकल अर्थके ज्ञाता हैं, तौहू निवारणकी इच्छा नहीं करके विप्रशापहीको मुख्य करतभये कारण कि या समे आपु कालरूप हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

श्रीशुक उवाच ॥ गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ॥ अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥ को नु राजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ॥ अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम्॥ कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ॥ सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥

दूसरे अध्यायमें भक्तिसौं पूछे वसुदेवजी कों नारद जनक और नवयोगीनके संवादकरि शुद्ध वैष्णव धर्म कहैंगे ॥ तहां श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! गोविंदकी भुजनसौं पालित द्वारकामें श्रीकृष्णकी उपासनामें प्रेम करवेवारे नारदजी निरंतर वसतभये ॥ १ ॥ जा श्रीकृष्णकी उपासनामें मुक्तनहूकी उत्कंठा होइ, ताकों कौन न भजे, यह कहैं हैं सर्वत्र मृत्युसों त्रासित कौन इन्द्रियवंत भगवानके चरणकमल न भजे जिन चरणकमलनको देवतानमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करे हैं ॥ २ ॥ एक दिन नारद वसुदेवके घर आये, तब वसुदेवजी उत्तम आसनपर बैठारि पूजा नमस्कार करि पूछतभये ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिको मार्गरूप महत् पुरुष हैं, तिनको आइवो दीननके कल्याणके निमित्त है और जैसे माता पिताको आइवो पुत्रादिकनके सुखके निमित्त है, तैसे तुमारो आगमन सब देहधारीनके कल्याणको है ॥ ४ ॥ महात्मानकों देवताहूंकी उपमा

भजन्ति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ॥ छायेव
कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥६॥ ब्रह्मंस्तथापि
पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ॥ यांच्छ्रुत्वा श्रद्धया
मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुरा-
नन्तं प्रजार्थे भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय-
मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥

अनुचित है, यह कहें हैं, प्राणीनको देवतानको चरित्र बहुतवृष्टि आदिकरि दुःखहू करे सुखहू करेहै परन्तु साधुनको चरित्र तो सदा सुखही करेहै या कारण तुम सारिके अच्युत रूपनकों आगमन तो सुखहीके निमित्त है ॥ ५ ॥ और देवता सुखहू देहैं तो भजन करिवेके अनुसार देहैं, तैसें साधु तो नहीं देहैं सो कहें हैं, जैसे छाया पुरुषकी चेष्टाके अनुसार होय है तैसे देवता कर्मानुसार फल देयहैं परन्तु आपसे साधु तो दीननको देखतेई कृपालु होय हैं ॥ ६ ॥ हे नारद ! हम यद्यपि तुमारे आइवेसोंही कृतार्थ भये तथापि तुमकों जिन धर्मनसों भगवान् प्रसन्न होय वे वैष्णवधर्म पूछेहैं जिन धर्मनको श्रद्धातें सुनेतें मनुष्य संसारते छूटेहैं ॥ ७ ॥ कदाचित् तुम कहो भगवानके प्रसन्नताके पात्र तुमतें परे और कोई नहीं है तहां वसुदेवजी कहें हैं हे नारद ! मुक्तिदाता अनंत भगवान्कों मैंने पुत्र कामनाकरि प्रथम आराधन कीनो, देवमाया करि मोहित होय मोक्षप्राप्तिके अर्थ

---

१ यहां दृष्टांत है कि एक देवीके भगतने देवीके जाय फूटचो नारियल भेट धऱ्यो और कही है हे देवी मैया ! मेरे बेटा होय तब वाके बेटा भया परंतु काणो भयो तब वह देवीकों भगत देखिते जायके बोल्यो कि क्योंरी देवी ! तैंने मेरे काणो बेटा क्यों दीनो तब देवी बोली कि जैसी तेरी कौमरी तैसे मेरे गति जैसो फूटचो नारियल तैंने भेट करचो ऐसो काणो बेटा मैंने तोकूं दीनो, याते देवतान्को चरित्र सुखदुःख दोनों देयहै, परंतु हमारे महात्मानको संग तो सदैव सुखही देय है ॥

यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येम
ह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥
नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता भरतर्षभ ॥
यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥
श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः
पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया
परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भग-
वानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाह-
रन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं
विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

आराधन नहीं कियो यह बात सूतिकागृहमें श्रीकृष्णने कही सो मोकों स्मरण है ॥८॥ हे नारद ! ताते अनेकदुःखसंयुक्त सब ओरतें भयवारे संसारसों जैसे श्रम विनामेंछूटों तैसी हमको तुम शिक्षा देउ ॥ ९॥ हे राजन् ! बुद्धिवंत वसुदेवजीने जब ऐसे कह्यो, तब हरिके गुणनकी सुधि दिवाएते प्रसन्नभये देवऋषि नारद वसुदेवजीसों कहत भए ॥१०॥ हे यादवनमें श्रेष्ठ वसुदेव ! तुमने यह भलो निश्चय उत्तम प्रश्न कीनो, जातें तुम संपूर्णके चित्त शुद्ध करनवारे वैष्णवधर्मनको पूछौहो ॥११॥ये धर्म सुननो स्मरण करनो श्रद्धा करि आदरतें ध्यान करवेसो सम्मति देवेसौ सम्पूर्ण विश्वके पातकी जननकोहू शीघ्र पवित्र करदेय है कारण कि यह भगवत्सम्बन्धी धर्म है ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! तुमने परमकल्याणरूप पुण्यश्रवणकीर्तन देव नारायणको स्मरण करायकें मोकों पवित्र कियो जो विनकी सुध तुमने दिवाई ॥१३ ॥ अब यहां

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ॥ त-
स्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥
तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुत-
शतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो
ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना
भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां
निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै
जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नवनवद्वीपपत-
योऽस्य समन्ततः ॥ कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीति-
र्द्विजातयः ॥ १९॥

मैं तुमसों प्राचीन कथा कहूंहूं; उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरनको संवाद हैं ॥ १४ ॥ स्वायंभुवमनुको प्रियव्रत नाम पुत्र भयो, ताको पुत्र आग्नीध्र भयो, ताको नाभि भयो, ताकें ऋषभदेव भये ॥ १५ ॥ तिनके मध्य नवयोगीश्वरनको चरित्र कह्यो चाहैहैं तातें औरनको चरित्र न्यारो कहेहैं, विन ऋषभदेवकों वासुदेवकों अंश कहैहैं विननें मोक्षधर्म कहिवेकों अवतार लियो तिनकें १०० पुत्र भये ते सिगरे वेदपारंगत भये ॥ १६ ॥ तिनमें नारायणपरायण भरतजी श्रेष्ठ भये, यह अजनाभखंडही जिनके नामसें भरतखंड प्रसिद्ध भयो ॥ १७ ॥ सो राजा भरत पृथिवीकों भोग करि याकों छोडिकरिकैं तपस्याकों निकसे, हरिकी उपासना करते तीनि जन्ममें हरिकी पदवीकों प्राप्तभये जिनको चरित्रपहले पंचमस्कंधमें कहिआये हैं ॥ १८ ॥ या भरतखंडके चारों ओर विनके नौ पुत्र नौऊ द्वीपके पति भये, इक्यासी पुत्र कर्म-

नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा
वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥ कविर्हरि-
रन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रु-
मिलश्चमसः करभाजनः॥२१॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं
सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो
व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसि-
द्धसाध्यगन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ता-
श्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुव-
नानि कामम्॥२३॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्य-
दृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः
॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ॥
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥

मार्गके प्रवर्त्तक ब्राह्मण भये ॥ १९ ॥ और जे नव पुत्र महाभागवत मुनि भये वे परमार्थके उपदेशकर्त्ता आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर, दिगंबरवेष आत्मविद्यामें पारंगत भये ॥ २० ॥ तिनके नाम कहें हैं कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, करभाजन ॥ २१ ॥ वे सब या विश्वकों भगवद्रूप करिकैं देखतभये, स्थूल सूक्ष्मको आत्मातें भिन्न देखतभये, वे सब आत्मरूपहीकों देखते संपूर्ण पृथिवीमें फिरत भये ॥ २२ ॥ अप्रतिहतगतिसों आसक्तिरहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य,किंनर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण,गोलोकनमें अपनी इच्छासों विचरते हैं ॥ २३ ॥ वे सब स्वेच्छासो एक दिन अजनाभखंडमें ऋषिन करि विस्तृत उदारचित्त राजा जनकके यज्ञमें आवत भये ॥ २४ ॥ सूर्य्य समान तेजस्वी परमभागवतनकों

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयाञ्चक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९॥ अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः॥ ३१ ॥

देखि यजमान अग्नि ब्राह्मण सब उठि ठाढे भये ॥ २५ ॥ तब राजा जनक तिनकों नारायणपरायण जानि प्रसन्न भये आसन दे यथायोग्य पूजा करत भये ॥ २६ ॥ अपनी कांतिकरि शोभासंयुक्त सनकादिकनके समान तिन नौऊनको देखि प्रसन्न बहुत भये विनयकरि नम्र ह्वैकें पूछत भये॥ २७॥पहिले उनकी स्तुति करी कि तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवानके पारषद हो, जो तुम विष्णुभक्त हो लोकनकों पवित्र करवेकों सब ठौर विचरो हो ॥ २८॥ मैंने दुर्लभवस्तु पाई हैं,ताते मेरो बडो भाग्य है,यह कहैहैं देहधारीनकों जो क्षणभंगुर हू शरीर है तोहू मनुष्य देह दुर्लभ है,ताहूमें भगवान्के प्रिय भक्तनको दर्शन अति दुर्लभ हैं॥ २९ ॥ हे निष्पापो ! याते मैं तुमसों अत्यंत कल्याण पूछूं हूं, या संसारमें अर्द्ध क्षणहू सत्संग मनुष्यनको बडी निधि है ॥ ३० ॥ तातें हमें सुनिवेको अधिकारी जानों तौ मोसों वै-

नारद उवाच॥एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेवमहत्तमाः॥
प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥
कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बु-
जोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावा-
द्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता
प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अञ्जः पुंसामविदुषां
विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय नरो
राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न
स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥

ष्णवधर्म कही जिन धर्मनकरि प्रसन्न भये भगवान् भक्तनको अपनो आत्माहूको देय है ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले हे वसुदेव! ऐसे राजा जनकके पूछें वे "अति बडे महंत" ऋत्विज और सभासद सहित राजा जनककी स्तुति प्रीतिपूर्वक करत भये ॥ ३२ ॥ जनकने नौ प्रश्न कीनें प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरो परमेश्वरकी भक्ति, तीसरें माया, चौथो मायाको तरणो, पांचवें ब्रह्म, छठचो कर्म, सातवों अवतार चरित्र, आव्वों भक्तिप्राप्ति, नोंयौ युग, इन एक एक प्रश्नको उत्तर नौहू मुनीश्वर देत भये, तहां प्रथमही अति कल्याणरूप धर्म कवि योगीश्वर बोले कि हे राजन्! मैं तौ ऐसौ मानौ हौ हरिके चरणारविंदनकी उपासनाही सब प्रकारके भय दूर करै है जाके करवेसों देहादि भिन्न पदार्थनके गर्वसौ सदा उद्वेगकों प्राप्त हैके यह पुरुष संसारके भयसौ छुटजाय है ॥ ३३ ॥ वैष्णव धर्मके लक्षण कहे है प्रथम मनु आदि ऋषिनके मुखसों वर्ण आश्रम धर्म सब कहैं हैं, पीछें अति रहस्यतें अपने मुखसै भगवान्ने अज्ञानियनकों सुखपूर्वक आत्मज्ञान पाईवेके जो उपाय कहे हैं वे सब वैष्णवधर्म हैं ॥३४ ॥ विन धर्मनकों

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्मायायाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥

आश्रय कर मनुष्य कबहूं विघ्नसों नहीं पीडित होयहै हे राजन् ! नेत्र मुंदिके दौरे तौहू नहीं गिरै ता कदाचित् वर्ण आश्रम धर्म न बन पडे तौहू प्रतिवादी नहीं होय है और न फलतें भ्रष्ट होय है ॥ ३५ ॥ जे विधिसों बताये शास्त्रोक्त किये कर्मही नारायणके अर्पण करै यह नियम नहीं है किन्तु शरीर वाणी मन बुद्धि अहंकार और अध्याससों माने भए ब्राह्मणत्वादि सौहू जो कछु कर्म करवेमें आवे वे सब परमेश्वरके अर्पण करवेसों शारीरिकी क्रिया सब नारायणसम्बन्धी धर्मरूप हो जाय हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसों विमुखको विनकी मायासो भगवत्स्वरूपको ज्ञान नहीं होयहै तातें अहंदेह अभिमान होइहै तब दूसरेके अभिनिवेशतें भय होय है जाकारण कि जिनकी मायासो भय होयहै यातें गुरुको देवता और इष्ट माननेवारे बुद्धिवंत निश्चयकरि भक्तिसे ईश्वरहीकों भजें, तहां पूर्वपक्षमें कहैं हैं कि चित्त विषयनसो चंचल होई विनकों निश्चल भक्ति कैसे होई, और भक्ति न होइ तो भय कैसें जाइ ताको उत्तर है कि विषय कछु वस्तु नहीं हैं केवल मनको विलास मात्र है, यातें मनकों निग्रह करिकैं जो भजन करैतो अभय

१ कवित्त-काम जब जागै तब गिनत न कोऊ शंक जाने सब जोइ करि देखे तन माधी है । क्रोध जब जागै तब नैकन संभारि सकै ऐसी विधि मूलकी अविद्या जिन साधी है ॥ लोभ जब जागै तब तृप्ति न क्योंहू होय सुंदर कहत इन ऐसेही में खाधी है । मोह मतवारो निशदिनही फिरत रहत मनसों न कोऊ हम देख्यो अपराधी है ॥ १॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्न-
मनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो
निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणि
रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके॥गीतानि
नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः
॥ ३९ ॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो
द्रुतचित्त उच्चैः॥हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मा-
दवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं
महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्॥ सरित्स-
मुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥

होइ, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूपही है दूसरो कोऊ नहीं हैं ॥ ३७॥ तथापि अविद्यासौं द्वैत भासै है जैसे ध्यानकर्त्ता पुरुषकों मनसो स्वप्न और मनोरथ दीखै है तातें संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनकों बुद्धिवंत रोके, तब निश्चल भक्ति करिकैं भजनतें अभय होइ ॥ ३८ ॥ जे जगदीशके शुभ कर्म जन्म हैं और जे जन्म,कर्म करिकैं भये नाम लोकमें प्रसिद्ध हैं तिनकों लज्जा छोडिकैं निस्पृही ह्वैकैं गावत फिरे ॥ ३९ ॥ ऐसें भजन करवेसौं प्रेमलक्षणा भक्तियोगकों प्राप्त ह्वैवेसौं वाकी संसारतें न्यारी गति कहैं हैं,ऐसो जाको आचरण है और हरिके नाम कीर्त्तनसो अनुराग बढवेसो और चित्त अतिकोमल ह्वैवेसौं वह भक्त भगवानको जीतलेय हैं तब विनकी यह दशा ह्वैजायहै कभी भगवानको अपने वशमें जानकै हंसते इतनो काल व्यर्थ गयो यह जानि कर रोते कबहूं अति उत्कंठातें पुकारते कबहूं आनंद मानिकै ऊंचे स्वरसों गाते कभी नाचते या प्रकार अलौकिक उन्मत्तनकीसी चेष्टा करन लगे हैं ॥ ४० ॥ आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ज्योति

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एक-
कालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः
क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽ-
नुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवन्ति वै
भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्
॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृ-
शो नृणाम्॥ यथाऽऽचरति यद्ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः
॥४४॥ हरिरुवाच॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमा-
त्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्नेष भागवतोत्तमः॥४५॥

सब प्राणीमात्र दिशा वृक्ष नदी समुद्र सबकों हरिहीको शरीर जानें अनन्यचित्त ह्वैकें प्रणाम करे यह वैष्णवनके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहैं यह धर्म तो योगेश्वरहूकों दुर्लभ है, अनेक जन्महूं करिकें अलभ्य है, सो एक नाम कीर्त्तनमात्रतें एकही जन्ममें कैसे होइहै तहां कहैं हैं प्रेमलक्षणाभक्ति और प्रेमाश्रय भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकनमैं वैराग्य ए तीनों हरिके भजनकर्त्ता पुरुषको एकही समय होय है जैसें भोजन करे ताको सुख पुष्टि पेटको भरवो भूखकी निवृत्ति ये तीनों एकही कालमें ग्रास विषें होय हैं ॥ ४२ ॥ पीछें भगवान्के प्रसादतें कृतार्थ होइ सो कहैं हैं, या प्रकार हरिचरणारविंदको नित्य भजन करे ताकों प्रेमलक्षणाभक्ति और वैराग्य और साक्षात् भगवत्स्वरूप ज्ञान तीनों होंइहै तब परमशांतिकों पावै है ॥ ४३ ॥ अब राजा जनक पूछे हैं वैष्णव मनुष्यनके मध्यमें कैसे होय हैं कौन धर्मके विषें स्थित, कैसो स्वभाव कैसो आचरण कैसों बोलिवो, कैसे चिह्न है जिनसों भगवानको प्रिय होय है, सो सब मोसों कहो ॥ ४४ ॥ याको उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीनि श्लोकनसो देय

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥४७॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥

हैं जो अपनपेकों सब प्राणीमात्रमें ब्रह्मरूपकारि स्थिति देखें, ब्रह्मरूप आपविषें प्राणीमात्रकों देखें, सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरके विषें प्रेम करै, भगवानके भक्तनसों मैत्री करै, मूर्खनपै कृपा करे, शत्रुनकी उपेक्षा करै, वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ जो भक्त भेदबुद्धिसौं केवल प्रतिमाहीमें श्रद्धा राखे है और जीवनमें तथा भक्तनमें जाकी श्रद्धा नहीं वो प्राकृत भक्त हैं ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकनकरिकै उत्तम वैष्णवनके लक्षण कहै हैं जो इंद्रियनकरिकें विषयनकों भोग करैं हैं पर काहूसों न द्वेष है न प्रीति है सब वस्तु मात्रको ईश्वरकी मायाकरि जाने हैं, सो भक्तनमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म, जन्म, मरण, इंद्रियनको कष्ट, प्राणनकों भूख, मनकों भय, बुद्धिकों तृष्णा,इन संसारके धर्मनतें जो मोह न पावे, निरंतर हरिको स्मरण करे सो वैष्णव भक्तनम मुख्य हैं ॥ ४९ ॥ जाके मनमें काम कर्मनकी वासनाहू न उपजे, चित्त एक श्रीकृष्णस्वरूपमें वसै सो

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः॥ सज्ज-
तेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः॥५१॥ न यस्य
स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा॥ सर्वभूतसमः
शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥५२॥ त्रिभुवनविभवहे-
तवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्॥
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः
स वैष्णवाग्र्यः॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशा-
खानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे॥ हृदि कथमुप-
सीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥५४॥

वैष्णवनमें उत्तम है, इन तीनि श्लोकन करि भक्तनके आचरणको उत्तम कह्यो॥५०॥ जाके या देहमें कुल तप वर्ण आश्र म जातिको अभिमान नहीं सो भगवान्‌को अतिप्रिय भक्त है॥ ५१॥ जाकों वित्तमें अर्थात् धनमें और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि होई शांत होई सो वैष्णवनमें उत्तम है॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये हरिही विषें जिनको चित्त है जो देवतानसौ दुर्लभ भगवानके चरणकमलके भजन विना आधेहू छिन लवमात्रहू नहीं वितावे सो वैष्णवनमें श्रेष्ठ हैं कारण कि इनके हरिके चरणनतें और सार कछु नहीं ऐसो दृढ ज्ञान है॥ ५३॥ यदि विषयके संगतें कामसो संतापित भये भक्तनहूके मन चंचल होइ तो क्या तापै कहे हैं हरिसेवामें सुख मान्नेवारेको तौ मन नहीं चलायमान होय अनंत पराक्रम भगवान्‌के चरणकी शाखारूप अंगुरियानके नखरूप मणिकी चंद्रिकासो सब कामादि ताप दूर हैवेसौ भक्तके हृदयमें ताप नहीं उपजे, जैसें चंद्रमाकें उदय भयेते सूर्य्यको ताप दूरि होय हैं औरहु मुख्य लक्षण कहें हैं॥ ५४॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामि भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिष्टप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥

केवल नाममात्रकें लेतही संपूर्ण पापनको समूहनको नाश करनेवारो साक्षात् भगवान् हरिकों हृदयमेंते न त्यागे सो वैष्णवनमें उत्तम है कारण कि याने प्रेमडोरीसो हरिके चरणकमल हृदयमें बांधि राखे हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

माया और मायाको तरण और ब्रह्म कर्म इन चारि प्रश्नको उत्तर चारि ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरें अध्यायमें कहैंगे ॥ जनक बोले परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाकूं मैं जान्यो चाहूंहूं, हे भगवत्परायण ! तुम कहो, जो माया बडे मायावीनकोहू मोहेहो ॥ १ ॥ कदाचित् तुम कहो उक्त लक्षणवारो भक्त ह्वैके कृतार्थ होय तो बहुत परिश्रम करिकैं कहां करेंगे, तहां कहै हैं, मरणधर्ममें संसारके तापसौ अत्यंत ताप होयहै ता तापको औषध हरिकथारूप अमृतकूं तुह्मारे वचन-

अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरत् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसम्प्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

नसों पीवते मोको तृप्ति नहीं होयहै ॥ २ ॥ तब अंतरिक्षनामा योगीश्वर बोले हे राजन् ! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणीमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवनके मोक्षके अर्थ पंचमहाभूतनसों शक्तिकरिकैं बुद्धि इंद्रिय मन प्राण शरीर उत्पन्न करै हैं सो शक्ति मायाको रूप है ॥ ३ ॥ या भांति पंचमहाभूतनसूं सृष्टि बनाय सकल प्राणीनके मध्यमें भगवान् अंतर्यामी रूपसौं प्रविष्ट ह्वैकरि एक प्रकार मन और दशइंद्रीरूपसौं जीवनको न्यारे न्यारे विषयभोग करावैहैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अंतर्यामीसौं प्रकाशित इंद्रियनसों विषयभोग करते मायारचित शरीरकों आत्मा मानिके वाही शरीरमें आसक्त होयहैं ॥ ५ ॥ यह जीव कर्मेंद्रियनसों वासनासहित कर्म करै है विन कर्मनसूं सुखदुःखरूप फलको भोग करतो संसारमें भ्रमै हैं ॥ ६ ॥ या भांति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा परवश होकै महा प्रलय पर्यंत जन्म मरणकों प्राप्त होयहैं ॥ ७ ॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अना-
दिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा
ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपाचितो-
ष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमा-
रभ्य सङ्कर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्व-
र्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म
शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले
विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो
नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥
वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ स-
लिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

अब प्रलय कहैं हैं पंच महाभूतनके नाशकों काल जब निकट आवैहै, तब आदि अंतरहित जो काल है सो लीन करिवेकों या स्थूल सूक्ष्म प्रपंचकों खेचैहै ॥ ८ ॥ अब नाशके कारण कहैं हैं, पहिले पृथ्वीमें सौ बरस ताईं अति दारुण अनावृष्टि होइगी, पीछें वा कालमें बडी उष्णतासो सूर्य्य तीनि लोकनमें तपेगो ॥ ९ ॥ पातालतलतें आरंभ करिकैं जरावत ऊंचेंकों शिखा कियो अग्नि वायु करि प्रेरचो चारों दिशानमें बढैगो ॥ १० ॥ पीछें सांवर्तक नाम प्रलय कालको मेघगण सौ बरस ताईं हाथीकी सूंडिके प्रमाण धारानसों वर्षैगो, तब वा जलमें यह ब्रह्मांड लीन होइगो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि ईंधन न होइ तब शुद्ध अग्निमें मिलिजाय है ऐसेही ब्रह्माण्डरूप शरीरवारो विराट् पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने शरीरको छोडके सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश करजायहै ॥ १२ ॥ पृथ्वीके गुण

हतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

गंधको प्रलयकालको पवन हरि लेहै, तब पृथ्वी गुणरहित हो जलमें लीन होयहै, पीछे जलके गुण रसकों वही पवन सोखि लेइहै, तब जल तेजमें लीन होयहै ॥१३ ॥ प्रलयकालके अंधकारसे रूपरहित हैवेसो तेज वायुमें लीन होयहै पीछें आकाशसे स्पर्शगुण हर जायवेसो वायु आकाशमें लीन होयहै, पीछें आकाशके शब्द गुणकों कालरूप ईश्वर हरिलेहै, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन होय है ॥१४॥ पीछें इंद्री बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होयहै, मन इंद्रियनके देवतान सहित सात्विक अहंकारमें लीन होयहै, हे राजन्! याही भांति तामस राजस सात्विक ए तीनों गुणकों कार्य्य इंद्रियादिकसहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होय है, वह महत्तत्व प्रकृतिमें लीन होय है॥१५॥ सात्विक राजस तामस तीनों गुणयुक्त उत्पत्ति पालन प्रलय करनहारी यह माया भगवानकी है, मैनें तुमसों याको रूप कह्यो, अब और कहा सुनिवेकी इच्छा है ॥ १६॥ या भांति अतिदयायुक्त मुनिकों देखिकैं या संसारकी माया तरिवेको उपाय जनक पूछे हैं, यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियनको अति दुस्तर है,तातें देहाभिमानीहू जा प्रकार वाकू सुखसों

प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥

तरसकै याकों सुखसों तरैहैं हे महाऋषि ! सो उपाय तुम मोकूं बताओ ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगीश्वर बोले हे राजन् ! भगवान्की भक्ति विना मायाके तरिवेको और उपाय नहीं है, यह जानि साधनासहित भक्तिको वर्णन करते पहलें वैराग्यकारि गुरुनके निकट जाई सो चारि श्लोकनसें कहें हैं, हे राजन् ! स्त्री पुरुष मिलिकें अपनें सुखकों और दुःख दूरि करिवेको कर्मनको आरंभ करैं हैं तिन कर्मनके फलमें विपरीत देखे कहा सुखके लिये किये तिनमें दुख देखै ॥१८॥ कर्मके साधनसौ धनादिक मिलकैहू सुखको नहीं देय हैं यापै कहे हैं नित्य दुःखदाई तापै दुर्लभ अपनी मृत्युकारक धन गृह पुत्र बधु पशुनिकें पायेते कहां सिद्धि हैं ये तो सब मिथ्या हैं ॥१९॥ या भांति कर्मनसो उपजे परलोकहूको मिथ्या जाने, जामें अपने समानसौ ईर्षा, अधिककी निंदा, स्वर्गतें गिरिवेको भय, इतनें दुःख स्वर्गहूविषे हैं जैसे थोरी भूमिके राजानको तुल्य देखकै ईर्षा, अधिककी निंदा और चक्रवर्ती राजातें भय इत्यादि दुःख होयहैं ॥ २०॥ तातें अपनो उत्तम कल्याण चाहें तो भक्ति करिकैं गुरूनकी सेवा करे गुरुकैं लक्षण कहे हैं, मुख्य तो वेदको अर्थ अतिश्रेष्ठ जानतहोइ,

तत्र भागवतान् धर्माञ्छिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाय-
याऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥ २२ ॥ सर्वतो
मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु॥दयां मैत्रीं प्रश्रयं
च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥२३ ॥ शौचं तपस्तितिक्षां
च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च
समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥

जातें सब संदेह दूरि करिसकें, और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जानें, जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरकों कैसे ज्ञान देइगो अति-शांतरूप होइ कारण कि ब्रह्मज्ञान ताहीकों होयगो जो शांत होइगो ॥ २१ ॥ भक्तनको आत्माके देनहारे परमात्मा हरि जिन वैष्णव धर्मनकरिकै संतुष्ट होयहैं, विन धर्मनकों गुरुकों आत्मा और इष्ट जानिकें भक्तजन गुरुमें निष्कपट सेवा करिकैं सीखे ॥ २२ ॥ पहिले तो संपूर्ण वस्तुनविषें मनकों चलायमान न करे पीछे सत्संग करे सब प्राणीनविषें दीननपै मन वचनसौं दयायुक्त चित्तमें सबसों मैत्री करे उत्तमनविषे नम्रता सीखे ॥ २३ ॥ बाह्य शौच सीखे (मृत्तिका ले हाथ पाय आदि धोवे), अनंतर शौच सीखे (मनमें दंभ अहंकार

१ परन्तु मूर्ख चेला न करै क्यों कि मूर्ख चेलनसो गुरुनको दुःखही होताहै। एक बाबाजी अपने चेलाको संग लेकर स्नानको गये तौ जब ये स्नान कर चुके, और किनारेपर आयकर ध्यान करते समय जब अंगन्यास करन्यास करनेलगे, तब वा शिष्यने विचारी कि गुरुजीको कछु ह्वैगयो, सो बोल नहीं सकते तासे हाथनसो इसारा करे हैं, सो झट अरने उपलों याने बटोर चीमटा गरम कर जहां जहां गुरू-जीने अंगन्यासमें हाथ लगायो हो तहां तहां याने दाग दियो गुरूजी आंखें मींचे बैठेथे शरीरमें तप्तलोहा लगतेही चौंकपरे, आंखें खोलकै देखै तौ चेला गरम दाग लगारह्यो है जप करेहै बोले तौ नहीं पर अपने हाथसों माथा ठोक्यो, कि तेरो दोष नहीं प्रारब्धका दोष है चेलाने जानी कि यूं कहैं हैं कि माथेपरहू दाग दे, सो गरम चीमटा माथेपर लगादिया, यासे मूर्ख चेलासेभी दुःख होयहै ॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विवि-
क्तचीरवसनं सन्तोषो येन केनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धां
भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्क-
र्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६॥ श्रवणं कीर्त्तनं
ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थे-
ऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं
यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्प-
रस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥

न राखे), धर्मको आचरण, क्षमा, यथायोग अध्ययन ब्रह्मचर्य सीखे वृथा वार्त्ता न करे, कुटिल न रहै, द्रोह न करे, सुख दुःखमें समबुद्धि राखे ॥२४॥ सब प्राणीमात्रमें समान चैतन्य आनंदरूप करि ब्रह्मको विचारे, नियंताकरि ईश्वरकों विचारे, एकांतमैं रहे, गृहादिकनमें अभिमान न राखे, निर्जन मार्गमें परें वस्त्र अथवा वल्कलको पहरे, जो वस्तु प्राप्त होइ ताहीसों संतोष राखे, औरकी इच्छा न राखे ॥२५॥ जे शास्त्र केवल भगवान्हींकों बतावैहैं, ते भागवत शास्त्र हैं, तिन्हें सुनिवेकी श्रद्धा राखे, औरकी निंदाहू न करें, मन वचन कर्म इन तीनोंनको दंड देय मनको तो प्राणायामकरिकैं रोकै वाचानको दंड झूठे वचन न कहै, कर्मको दंड चेष्टा न करे सत्यवचन सीखे, अंतःकरण और सब इंद्रियनको निग्रह करे ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्मनके कर्त्ता हरिके जन्म कर्म गुणको श्रवण कीर्त्तन ध्यान करे, और कर्म जो करे सो सब हरिके निमित्त करे ॥ २७॥ यज्ञ दान तप सदाचार और आपुकों जो प्रियवस्तु होइ सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्रीपुत्र गृह प्राण ये सब परमपुरुष भगवान्के निवेदन करे ये धर्म सब गुरूनके पासतें सीखें ॥ २८॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥ स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हारम् ॥ भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ॥ गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्माञ्छिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

या प्रकार श्रीकृष्णको आत्मा माननेवारे मनुष्यनसो मैत्री और स्थावर जंगम प्राणीनमें सेवा विशेषकरके मनुष्यनकी और उनमेंहू महात्मानकी सेवा करै साधुनकी वासे करे ॥ २९ ॥ तिन साधुनसों संगकरिकैं भगवानके पवित्र यशको परस्पर कहिवो सीखे फेरि ईर्षा छोडि परस्पर प्रीति, सबते संतोष परस्पर सुख समस्त दुःखनकी निवृत्ति सीखे ॥ ३० ॥ संपूर्ण पापनके समूहके नाशकर्त्ता हरि भगवान्को आपु निरंतर स्मरण करे, औरनको स्मरण करावे, तव स्मरण कीर्तन रूप भक्तिके करेते प्रेमलक्षणा भक्तिकरिकैं रोमांचयुक्त शरीर है जाय है ॥ ३१ ॥ ऐसें भगवान्कों चिंतवन करत कबहू रोवे, कबहूं हँसे, कबहूं आनंदको प्राप्त होइ, कबहूं बाह्यलोकनकी भांति वचन कहै कबहू नाचे कबहूं गावे कबहूं भगवानके स्वरूपकी लीला करे, कबहू परमसुखमें मग्न होइ, कभी चुप्प रहे ॥ ३२ ॥ ये वैष्णवधर्म सीखि करि प्राप्त भई भक्तिसों

राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवादिनः ॥ ३४॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥

नारायणपरायण ह्वैकें सुखही करि दुस्तर मायाकों तरे ॥३३॥ यह सुनिकै राजा जनक पूछे है हे महाराज! तुमनें कही कि नारायणपरायण होइ सो मायाकों तरे सो नारायणके तौ तीनि नाम सुने हैं एक तो नारायण, एक ब्रह्म, एक परमात्मा, तहां इन तीन नामनकरि निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कछु भेद है सो विशेषकरिकैं मोसूं कहो तुम ब्रह्मकों अच्छीतरे जानौ हो ॥ ३४ ॥ तब पांच वे ऋषी पिप्पलायन उत्तर देय हैं हे राजन् जनक! जो या विश्वके उत्पत्ति पालन प्रलयको कारण हैं और आपु कारणरहित हैं सो नारायण हैं वही परमतत्व है, जो स्वरूप स्वप्नमें जाग्रत्में सुषुप्तिमें साक्षीरूपसो तौ वर्तमान है और वास्तवसौं देखौ तो इन अवस्थानसो रहित है सो ब्रह्म है, वही परमतत्व है समाधिमें जाकों मुनीश्वर देखे हैं, ताहूकों ब्रह्म कहैं हैं वही परमतत्व है, और जासो देह इंद्रिय मन प्राण ये सब चैतन्य भये ही कार्यकों समर्थ होय है सो परमात्मा है वही भगवान् स्वरूप है, या भांति तीनों नामके भेदकरिकैं एकही तत्व जानियें ॥ ३५ ॥ जो तुम कहो कि यासौं ब्रह्मकों विषयतत्वता

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमि-
ति प्रवदन्ति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरु-
शक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

प्राप्त भई ताको निषेध कहें हैं जो ब्रह्मप्रति मन नहीं प्रवेश करै है या ब्रह्मकों वाणी नेत्र बुद्धि प्राण और सब इंद्रिय स्पर्श नहीं करिसके हैं जैसें छोटी चिनगारी महाभूत अग्निकों नहीं प्रकाश कर सकै है न जराय सकै है तैसें मन आदि जड इंद्रिय सृष्टिनके प्रकाशक ब्रह्मकों जड इंद्रिय क्यों करि प्रकाश करसकैगी तहां पूर्वपक्ष करे है, अहो वेद तो ब्रह्मकों बतामें हैं तहां कहै हैं कि वेदहू प्रगट नहीं कहै हैं कारण यह है कि वेद स्वयंही कहै है कि वाणी मन आदिसों जे पदार्थ जाने जाय हैं जो इनके बोध न करनेवारे हैं वे ब्रह्मको नहीं प्राप्त है सके है यासों ये न जानिये कि वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं कि स्थूलहू ब्रह्म नहीं हैं अणुहू ब्रह्म नहीं जो वाणीसे कह्यो जाय सोहू ब्रह्म नहीं इत्यादि या निषेधकी जो अवधि हैं वही ब्रह्म है विना अवधिके निषेध नहीं है सके है ॥ ३६ ॥ फेरि कहै हैं जो सबको प्रमाण वेदहूकों गम्य नहीं तो ब्रह्मही न होइगो, ताको उत्तर देइ हैं ब्रह्म नहीं ये नहीं कह्यो जाय जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखो जाय है सो सब ब्रह्मही भासे है याते सब विश्वके कारण भगवान्‌ही है (तहां पूछेहै) एक ब्रह्म बहुविधि विश्वको कारण क्यों है (तहां कहै हैं) ब्रह्मकी शक्ति अनंत सामर्थ्य करिकैं अनंतरूप हैं(सो कहैं हैं) पहिले एकरूप है पीछें सत्वरज तम मायाके रूप भये, पीछे क्रियाशक्ति करि प्राणरूप भये फेरि ज्ञानशक्ति करि महत्तत्त्व भये पीछें अहं-कार रूप भये जासों जीव बंध्यो हैं, ता पीछें इंद्रिय रूप भये, इंद्रि-नके देवतारूप भये, कर्मनके फल सुख दुःख रूप भये। या भांति सब रूप ब्रह्मही हैं, सर्वरूप करि आपतें प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थाप-

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते
सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सर्वत्र शश्वदनपाय्युप-
लब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत्
॥ ३८ ॥ अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि
जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि
च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः॥३९ ॥

नाविषें प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥३७॥ तहां पूर्वपक्ष करैं है, संपूर्णरूप आपुही है तो यह विश्व तो सब मरैहै फेरि उपजे है यातें ब्रह्महूको जन्म मरण होयहै (तहां कहैं हैं) यह आत्मा न जन्मे हैं, न मरे है, न बढै है, न क्षीण होय है, जातें आगमापाई बाल युवादिक देहनकी अवस्थाको साक्षी है साक्षीकों ये अवस्था नहीं लगे हैं केवल ज्ञानरूप हैं तहां कदाचित् कोऊ कहैं कि ज्ञान तो एक क्षणमें उपजै है, एकक्षण रहै है, एक क्षणमें नाश पावे है, (तहां कहैं हैं) यह सदा रहै है जो कोऊ कहै नीलज्ञान उपज्यो पीतज्ञान गयो, ऐसें ज्ञानहूकी उत्पत्ति नाश सुनियें है, तहां कहैं है नील पीत इंद्रियनकी वृत्ति उपजे है, वृत्तिनहीको नाश होय है, ज्ञान तो एकरूप है यह प्राणके दृष्टांत कहैं हैं ॥ ३८ ॥ इन्द्रियादि केवल हरिहीको दिखावैहैं, जैसें पक्षी पशु स्वेदज वृक्षादिकनमें सर्वत्र जहां जहां जीव जाइहै तहां तहां याके संग प्राणहूं जाइ है, पर प्राण निर्विकार हैं जैसे आत्माहूं निर्विकार रहै हैं (तहां पूछेहै) मनुष्यादिक देहनमें आत्मा क्यौं सब विकारसो दीखै है (तहां कहैं है) जाग्रतमें इंद्रियगणके दोषते स्वप्नमें अहंकारते सब विकारसो दीखे है सुषुप्तिमें तो इंद्रियगण और अहंकारके लयते निर्विकार आत्मा है, जाते विकारके हेतु लिंग शरीरकी उपाधिको अभाव है (तहां पूछे है) सब नष्ट भयेसो आत्मा रहै है यह कैसे जाने

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥
राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥
एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥

(सो कहे है) जब जागे है तब जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव भयो है ताको स्मरण होय है, आजु मैं बहुत सुखसों सोयो, यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना न होइ, ताते सुषुप्तिमें आत्माको अनुभव निर्विकार होयहै, पर विषयको संबंध नहीं याते वह अनुभव प्रकट नहीं होयहै ॥ ३९ ॥ फिरि संदेहते पूंछैं हैं याकौं सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होइ तो संसार फेरि क्यों होयहै जो कहो कि याकी अविद्या नहीं गई, ताकी वासनातें संसार होयहै तो अविद्या क्यों जाइ (तहां कहै है) जब गृह पुत्र धनादिकनकी वासना छोडिकैं केवल भगवान्के चरणारविंदनकी इच्छा करे तातें भक्ति बढै है ता भक्तिकरि चित्तके गुण कर्मसो उपजे सब पाप दूरि होयहैं तब चित्त शुद्ध ह्वैकै प्रकट आत्मतत्व पावे जैसें निर्मल दृष्टिके भये सूर्य्यमंडलको प्रकाश दीखे हैं ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले भक्ति तौ कर्मयोगके आधीन हैं, तातें प्रथम मोसों कर्मयोग कहो, जा कर्मके कियेतें शुद्ध होइ फेरि कर्मको वेग दूरि करिकै पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पावे, जातें सब कर्म निवृत्ति होइ सो कर्मयोग कहो ॥४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगें सनकादिक ऋषि जब आये हे तब पूछ्यो हो, उननें मोसों न कह्यो याको कहा कारण सो मोसूं कहौ ॥ ४२ ॥

आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५

तब आविर्होत्र बोले हे राजन् ! वेदमें जाके करबेकी आज्ञा हैं वह कर्म है जाकौ निषेध है वह अकर्म है और जाके करबेकी आज्ञा है वह न करैं तो विकर्म कह्यौ जाय है ये तीनों भेद वेदहीको गम्य है, याको निर्णय मनुष्यनको अशक्य है, जातें वेद साक्षात् ईश्वररूप है, पुरुषके वचनमें वक्ताको अर्थ जाननो अति कठिन है, तहां पंडितहू मोह पावे है, तब तुम बालक हे याते तुमसों न कह्यो॥४३॥ वेदको तात्पर्य्य काहेते न जान्यो जाय सो कहे है, यह वेद सब परोक्षवाद है, अर्थ और भांति होइ ताके दूरावनेकों और भांति कहै सो परोक्षवाद कहिये । तैसे वेदमें कर्म छुटामनकों कर्म कहै है, मूर्ख वाही कर्मकों कर्म जानें हैं, तहां पूछें है कर्मको तो स्वर्गादिक फल सुनो जाय है कर्मकें त्याग फल कैसे जानो (तहां कहै हैं) यह जो कर्म करण कहै है, सो मूरखकी शिक्षाको है, नहीं तो धर्ममें काहूकी प्रवृत्ति न होइ जैसें बालककों औषधी खवानी चाहिये, तब लड्डू दिखाईये, और दीजिये ता लोभतें औषधी पीवे. तब औषधिको यह फल नहीं जो लडुआ खाय, औषधिको तो आरोग्य फल है, तैसें जीव सब विषयी हैं, लोभी है, तिनको लोभ स्वर्गादिकको दिखाय कर्ममें प्रवृत्त करें है पीछें याहूते निवृत्तिको फल उत्तम है, या ज्ञानकरि उन कर्मनको छुडावें है यह वेदको तात्पर्य है ॥ ४४ ॥ जो कर्म त्यागही मुख्य है तो पहिलेंई

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः॥४८॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयद्धरिम् ॥ ४९ ॥

कर्म त्याग कीजे (तहां कहे है) कि आपु अज्ञ होइ अजितेंद्रिय होइ जो वेदोक्त कर्म न करे तो कर्मके विना करे अधर्मसौ मरके फेरि मृत्युहीकों पावे सर्वदा कालहीकें मुखमें रहें ॥ ४५ ॥ तातें कर्म वेदोक्तही करे, निषिद्ध कर्म न करे, फेरि कर्मके फलकी इच्छा न राखे, जो कछु करे सो सब ईश्वरविषे समर्पण करे तब मोक्षरूप सिद्धि पावे (तहां पूर्वपक्ष कहे हैं) अहो वेदविषें फल सुनें जाय हैं जैसे औषधि पिवाइवेको बालकको लडुआ देनों ताते कर्म कियेते फल अवश्य होइगो (तहां कहे है) यह मति कहो कर्मनमें प्रीति उपजाइवेको फल सुनाइवो है जैसे औषधि देवेके समय बालकको मीठी चीज दिखावे हैं, अब वैदिककर्म कहिकै आगमकी विधि कहै हैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवकी अहंकारकी गांठि छुडायो चाहें सो आगम और वेदोक्तके प्रकार करिके सबकी पूजा करे ॥४७॥ सो पूजाप्रकार कहैं है जब याको ईश्वर अनुग्रह करे तब सद्गुरु मिले है वा गुरूनते पूजाकी विधि जाने तब आपुको जैसी मूर्ति रुचे तैसेही मूर्ति करिकै भगवानको पूजन करे ॥ ४८ ॥ (सो प्रकार कहै है) पहिले तौ आपु स्नानादिक करिकै पवित्र होइ, वा मूर्तिके सन्मुख

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्य-
क्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥५०॥
पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदा-
दिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥
साङ्गोपाङ्गां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥
गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ साङ्गं सं-
पूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आ-
त्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामा-
धाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥५४॥

बैठ प्राणायाम और भूतशुद्धि करि देहकी शुद्धि करे, पीछें उत्तम न्यासन करि अपनीरक्षा करिकैं हरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यको जंतु आदि शोधन करि भूमिको संमार्जन करि मनको साव-धान करि मूर्तिकों स्नानादिक कराय आसनकों प्रोक्षण करि प्रतिमा-दिक विषें अथवा हृदय मध्य यथाप्राप्त उपचारनसों पूजा करे॥५०॥ पाद्य अर्घ्य सब विधि किये पीछें पहिले अपने हृदयमें पूजित हरि भगवानकों संनिधापन मुद्राकरि दृढ धरि सावधान होइ ध्यान करै, पीछें हृदय शिर शिखा कवच नेत्र अस्त्रमंत्र और मूलमंत्र करि पूजे ॥ ५१ ॥ पीछें अंग हृदयादिक उपांग सुदर्शन आदि पार्षद, परिवार, देवतासहित ता मूर्तिको पाद्य अर्घ आचमन स्नान वस्त्र भूषण उप-चारनकरि ॥ ५२ ॥ गंध पुष्प अक्षत माला धूप दीप नैवेद्यन करि पूजे, तब स्तुति करि स्तोत्रनसों पीछें हरिकों नमस्कार करे,अक्षतसों वा मूर्तिविषें तिलक करिवेमें पूजे और समय न पूजें,अक्षतसों हरिकी पूजा और केतकीसों महादेवकी पूजा निषिद्ध है ॥५३॥ आपकों वा

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः॥ यजतीश्वर-
मात्मानमचिरान्मुच्यते च सः॥५५॥ इति श्रीमद्भा-
गवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

राजोवाच॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्द-
जन्मभिः॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु
नः॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच॥ यो वा अनन्तस्य गुणान-
नंन्तानतुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः॥ रजांसि भूमे-
र्गणयेत्कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥ २ ॥

मूर्तिरूप ध्यान करते हरिकी मूर्तिको पूजे पीछे वाको निर्माल्य माथे धरि देवताको स्वरूप हृदयमें धरिकैं पूजी मूर्तिको विसर्जन करि अपनें स्थानराखे॥ ५४॥ या भांति अग्नि सूर्य्य जल आदि विषें अतिथिमें हृदयमें आत्मरूप ईश्वरको जो पूजे, सो थोरे कालमें मुक्त होइ यह आगमकी विधि कही॥ ५५॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चौथे अध्यायमें अवतारकी चेष्टाके प्रश्नको उत्तर जयंतीनंदन द्रुमिलनाम सातयों योगीश्वर कहत भये सो वर्णन करें हैं॥१॥राजा जनक बोले तुमने पहिले कही कि हरिकी मूर्ति जैसी मनमाने तैसी मूर्तिकूं पूजे और स्तुति करे, सो हमकूं न मूर्तिको ज्ञान हैं, न गुण-कर्मको ज्ञान हैं, जो स्तुति करें तातें तुम तिनके अवतार और गुण कर्म कहो, अपनी इच्छा करिकैं हरिने जो जन्म लिये हैं जो कर्म किये हैं अब करें है, आगें करेंगे, ते सब कहो॥१॥ तब द्रुमिल योगी-

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

श्वर बोले अनंतरूप भगवान्के अनंत गुणनकों गिन्यो चाहै सो अज्ञानी हैं, पृथ्वीकें परमाणुनको बहुत काल करिकैं कोई एक बुद्धिवंत क्यों हूं करि गिनि सकैं पर अनंत शक्तिको आश्रय भगवान्के गुणनकों कदाचित् नहीं गिनिसके ॥ २ ॥ तोऊ संक्षेपतें कितनेक गुण कहूंगो पहिलें पुरुषावतार कहै हैं, जब आपु हरि पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्मांडरूप नगर उपजाय तामें लीलाकरि प्रविष्ट भये तातें आदिदेव नारायणपुरुषनामकों पावत भये ॥ ३ ॥ अब याके गुण कर्म कहै हैं, यह तीनि लोककी स्थापना जा पुरुषको देह है; और जाकी इन्द्रियनते देहधारीनकी सब इंद्री होय है;जाके स्वरूपतें भूत सत्वगुणतें ज्ञान होय है; प्राणतें देहशक्ति और इंद्रियशक्ति और चेष्टा ये सब होय हैं अकर्त्ता हैं या करि सूचन कियो विश्वको कर्त्ताहू है ॥ ४ ॥ प्रथम या विश्वके उपजायवेकों रजोगुण करि ब्रह्मा भयो, सतोगुण करि यज्ञके फलदाता ब्राह्मण और धर्मके रक्षक विष्णु पालक भये, तमोगुण करि संहारको रुद्र भये, या भांति प्रजानविषे जाते निरंतर जन्म पालन नाश होय

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋ-
षिप्रवरः प्रशान्तः ॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार
कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥
इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुङ्क्त
सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाप्सरोगणवसन्तसु-
मन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥
विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गत-
विस्मय एजमानान् ॥ मा भैष्ट भो मदनमारुतदेवव-
ध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥८॥

हैं सो आदिपुरुष हैं ॥ ५ ॥ अब पुरुषावतार करि नरनारायणको अवतार कहे हैं, तेई आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्री विषे ऋषिनमें श्रेष्ठ अति शांत नारायणरूप भये, जाते कर्म नष्ट न होय हैं, ऐसो निष्कर्म ज्ञान बतावत भये, और आपहू वैसोई कर्म करत भये श्रेष्ठ ऋषिनकरि सेवितचरण नरनारायण आजताईं बद्रि-काश्रममें विराजे हैं ॥६॥ भगवान्‌को अवतारको बतावनहारो परम शांतिको दिखावत एक इतिहास कहे हैं एक समय नरनारायणको परम शांत तपस्या करते देखि इंद्रने जान्यो मेरो स्थान तप करिकैं लियो चाहे हैं, तब तपस्यामें विघ्न करणको परिवारसहित कामको पठवावत भयो, तब अप्सरानके गण वसंतऋतु शीतल मंद सु-गंध पवनसहित तहां जाइकरिकैं स्त्रीनके नेत्र कटाक्षरूप बाणन करि मारतभयो पर उनकी महिमाको न जान्यो ॥ ७ ॥ तब गर्वरहित नरनारायण इंद्रको कियो अपराध जानि शापके भयकरिकैं कांपत कामादिक देवतानसों हँसि करि बोलत भये, हे कामदेव! हे देवांग-नाओ! भय मति करो, हमारो आतिथ्य लेउ, हमारे आश्रमको

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः॥ नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥९॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

सुवास करो ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जनक ! अभयके दाता श्रीहरिकों या भांति कहते लज्जासहित और नम्रशिर होयके कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसों बोलत भये हे प्रभो ! तुमकों यह आश्चर्य नहीं तुम मायाते परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम धीर मुनिनके समूह तुह्मारे चरणकमलको नमस्कार करैं हैं ॥ ९ ॥ हमारोहूं अपराधको आचरण कछु अचरज नहीं, हमारो ऐसोई स्वभाव है (यह कहैं हैं) स्वर्गकों उल्लंघनकरि तुम्हारे परमपद वैकुंठको जे तुम्हारे सेवक जाइहैं तिनको इंद्रादिक देवता बहुत विघ्न करै हैं, और जो यज्ञमें देवतानके भाग वलिनकों देइहैं ताको विघ्न नहीं करैं है, पर जाके तुम रक्षक हो सो तुम्हारो भक्त निश्चय करि विघ्नके माथेपर पाय देइहै ॥ १० ॥ अभक्तनकों काम क्रोध सब वश करें हैं उनमें जो हमारे वश होय भोगहू करैं हैं, जे क्रोधके वश हैं ते अतिमूर्ख है (यह कहैं है) क्षुधा तृषा शीत उष्ण वर्षा वायु और जिह्वाके भोग गुह्य इंद्रियनके भोगरूपी अपार समुद्रकों कोईएक अभाग्यवंत तपस्यासों उतरिकें निष्फल क्रोधके वश हैके गाइके खुरमें बूडे है, अतिकठिन

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ॥ दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ॥ गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥१३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरबन्दिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥१५॥इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः॥१६॥

तपस्याकों वृथा छोडें है न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ है ॥११॥ जा भांति कामादिकनकी विनति सुनि प्रभु अपने योगबलसो उत्पन्न अद्भुतरूपधारी सेवाकों करती आभूषण सहित स्त्री कामादिकनकों दिखावतभये ॥ १२ ॥ ते देवतानके सेवक मूर्तिवंत लक्ष्मीकी समान तिन स्त्रीनको देखि तिनके गंधसों मोहित हो तिनके रूप गुण उदारतासों इनकी शोभा दर्प सब जात भयो ॥ १३ ॥ तब देवदेवनहूंके प्रभु भगवान् हास्य कर नम्र भये कामादिक देवतानसो बोले इन स्त्रीनके मध्य काहू एककों तुम वरो, तब देवतानने कही हम तुच्छ हैं, कहां ऐसी स्त्री, कहां हम, तब नारायण बोले तुम्हारे समान जो कोऊ होइ ताइ लेउ तहां कामादिकनने फेरि कही हे महाराज! इनमें हमारे समान एकहू नहीं है, तब भगवानने कही कि एक तुम लेउ तुम्हारे स्वर्गकों तो भूषण होइगी ॥ १४ ॥ तब कामादिक आज्ञाको लेकरि प्रभुको नमस्कार करि अप्सरानमें श्रेष्ठ उर्वसीकों आगे करि स्वर्गको जातभये ॥ १५॥ स्वर्गमें जाई इंद्रको प्रणाम करि सभामें सब देवतानके सुनत नारायणको बल कहत भये, तब इंद्र

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋष-
भो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय जगतां कल-
यावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये॥१७॥
गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दि-
तिजउद्धरताम्भसः क्ष्माम् ॥ कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतो-
न्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्
॥ १८॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं
च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पि-
हिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे॥१९॥

अति अचरज पावतभये, और भयको प्राप्तभयो ॥१६॥ अब औरहू अवतार और विनको चरित्र कहैं हैं, तेई प्रभु हंसरूप अवतार ले आत्मयोग सब कहत भयें फेरि एक दत्तात्रेय एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभ देव हमारे पिता ये सब विष्णुरूपही अपनें अंशकरि जगत्के कल्याणको प्रकट हैं, तेई विष्णु एक समय हयग्रीव अवतार ले मधुदैत्यकों मारिकैं वेद ले आये ॥ १७ ॥ एक समय प्रलय समुद्रमें मत्स्यरूप धरि मनुकी और पृथ्वीकी औषधिनकी रक्षा करी वाराहावतार ले हिरण्याक्षकों मारि जलते पृथिवी उद्धारी कूर्मावतार ले अमृत मथिवेकों अपनी पीठपर मंदराचल राख्यो दुःखित व्हैकें शरण आये गजेंद्रको ग्राहते छुडावतभये ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजूके लियें काष्ठ लेन गयेहे, वे गायके खुरमें पानी भरचोहो तामें बूडनलगे, तब स्तुति कीनी वहांते आत्मविद्यामें तत्पर ऋषिनको उद्धार कियो, और वृत्रासुरके मारेतें जो ब्रह्महत्या भई तातें इंद्रको छुडायो अनाथ देवतानकी स्त्री असुरनके घरमें रुकीही, ते सब अनेक अवतारनकरि छुटाई, नृसिंहरूप धरि भक्त-

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वाऽन्तरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥२०॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हाञ्छूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥

नको अभयदान निमित्तके लिये हिरण्यकश्यप मारचो ॥१९॥ और मन्वंतरनविषें देवता और दैत्यनके संग्राममें देवतानके लिये अपनी कलानकरिकैं दैत्यपति मारे, संपूर्ण लोकनकी रक्षा करी, वामनरूप ले बलितें भीखके छलकरि या पृथिवीकों लेकरि देवतानको देतभये ॥ २० ॥ परशुरामको अवतार ले इक्कीसवार निःक्षत्री पृथ्वी कीनी हैहयकुलके नाशकों भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगटभयें, तेई फेरि, रामावतार ले समुद्र बांधत भये, लंकाविषे स्थित रावणको मारत भये, जिनकी कीर्ति संसारके पाप नाश करतीहै, सो रघुनाथजू अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥अब होनहार बलदेव और कृष्णको अवतार कहैं हैं, भूमिको भार उतारिवेकों अजन्मा आपु यादवनमें जन्म ले देवतनसों न करे जांइ ऐसे कर्म करैंगे पीछे जे यज्ञादिक करवेके अयोग्य दैत्यनको बौद्धरूप धरि मोहैंगे, पीछे कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार धर शूद्रजातिके राजनको मारेंगे ॥ २२ ॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एका० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

राजोवाच ॥ भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥

ऐसे श्रीहरिके जन्म और कर्म अनंत है, हे महाभुज ! बडे यशके मैंने तोसो संक्षेपतें कह्यो ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब भक्तिरहितनकी कहा गति है फेरि युगयुगमें कौन पूजाविधि है ये द्वै प्रश्नको उत्तर पांचवें अध्यायके विषे कहैंगे ॥ १ ॥ राजा बोले जिनकी कामना नहीं छूटी वे बहुधा भगवान् हरिको नहीं भजेहैं, तिनकी कौन गति है सो कहो ॥ १ ॥ तब आठयो चमसऋषि उत्तर देइहैं: प्रथम परम पुरुषके मुखतें सतोगुण करि ब्राह्मण उपजे; भुजानते सत्व रजकरि क्षत्री भये, ऊरूते रजोगुण तमोगुण करि वैश्य भये, चरणनते केवल तमोगुण करि शूद्र भये, आश्रमसहित न्यारे २ वर्ण भये ॥२॥ अपने जन्मदाता पुरुष ईश्वरकों इन वर्णनके मध्यमे

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥ वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥

उत्पन्न भये जे नहीं भजेहैं, और जानिकरिकें निरादर करे हैं, वे वर्ण आश्रमते भ्रष्ट भये पुरुष अधोगतिको जाइहैं ॥ ३ ॥ कोऊ एक ऐसे हैं जिनको हरि कथा श्रवण बहुत दूरि है, किनहूंको हरिकीर्तन अति दूरि है, जे स्त्री है शूद्रादिक हैं तिनके ऊपर तुम सारिखे महात्मा कृपालु होयहै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य ये यज्ञोपवीत रूप दूसरे जन्मसों और वेदाध्ययनकरि हरिभजनके उत्तम अधिकारी है, तथापि वेदोक्त कर्मनके फल सुनि वा फलमें आसक्त है यह भूलेहै जे अलपज्ञानते आपुको ज्ञानी माने हैं ते असाध्यहैं, तिनको त्याग योग्य है ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अंकुशल मूर्ख अपनेको पंडित मानने-वारे अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहे हैं जासों मोह उत्पन्न होय वह यह है कि यज्ञादिकनको फल अक्षय होइगो, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलीनता है, न पराजय है, ऐसे वचनसों उत्कंठित ह्वैकरिके कहे है हम अप्सरानसों विहार करेंगे यह कहते कर्ममें बंधे रहे हैं ॥ ६ ॥ उनको वा फलके भ्रमतें कर्मंहीमें आदर होयहै, ताते काम क्रोध मादक बढे हैं (यह कहे है) रजोगुणते राग द्वेष उपजे हैं ताते अभिचारके कर्मनपर मन होयहै तब वे घोर संकल्पी महातृष्णावारे सर्पकी

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु
चाशिषः ॥ यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं
घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥८॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन वि-
द्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनान्ध-
धियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः॥९॥
सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्ट-
मीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां
प्रवदन्ति वार्तया ॥१०॥ लोके व्यवायाऽमिषमद्यसेवा
नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु
विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्ट स्वभावसों अघजरे लोग नारायणके भक्तनकों हँसै हैं ॥७॥ जो स्त्रीनहीकी सेवा करते कभी वृद्धनकी सेवा नहीं करते केवल मैथुनमेंही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजारहित घरनमें रहिकैं मनके मनोरथवारे लोग कह्यौ करैं हैं आज मैंने यह पायो, यह मनोरथ आगें पाऊंगो, और जो काहू देवताकों पूजें तो अपनें स्वार्थकों पशुकी हिंसा करैं है न कछू विधि न दक्षिणा न अन्नदान करे ऐसे अज्ञ हैं; जे हिंसादोषको नहीं जाने हैं ॥ ८ ॥ धन ऐश्वर्य कुल विद्या दान रूप बल कर्म करकै विनकें गर्व होय हैं तासे मंदबुद्धि दुष्ट; ईश्वरसहित साधु परमेश्वरके भक्तनको निरादर करैं हैं ॥९॥ वे दुष्ट प्रगट वेदार्थको नहीं जाने हैं,जो वेद कहै हैं सब देहधारी-नमें यह अभीष्ट ईश्वर आत्मा सदा आकाशकी भांति व्यापि रह्यो है, और अपने प्रिय ईश्वरकों फेरि वेद प्रगट बतावे हैं, तोहू ये मूर्ख नहीं सुने हैं, मनोरथनकी वार्त्ता न करिकैं विवाद करैं हैं ॥ १० ॥ (तहां पूर्वपक्ष कहैहै) अहो स्त्रीसंग तो कह्यो है कि ऋतुदान करे,

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति॥ गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२॥

देवताको शेष भोजन करे, वह विषयभोग तो कह्योहै तुम क्यों निंदा करोहो (तहां कहै है) लोकमें स्त्रीसंग मांसभक्षण मदिराको सेवन नित्य है विषयासक्तनकों अनुराग स्वभावहीतें प्राप्त है, कछु विधि नहीं जो एक यही चहिये, जहां विधि कहीहै तहां ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे, यज्ञमें मांस भक्षण करे सौत्रामणिमें मद्य लेइ यह इनके छुडाववेकों नियम करे हैं जो ऋतुहीके दिन स्त्रीसंग करें यज्ञहीमें मांस मद्य लेइ, और दिन न लेइ यह नेम करि और दिनको निषेध कियो है, या बातकू विषयी मूर्ख नहीं समझें हैं, जे कामी अरुचि करि अथवा द्वेषकरि स्त्रीसंगादिक करैहैं, तिनको यह नेम है, जिनके कामना नहीं तिनको यह नेम नहीं, वेदको तो अभिप्राय सब दिन छुडाववेको है वाको मूर्ख नहीं समझै है ॥११॥ धर्म करनोही धर्मको फल है कारण कि धर्मानुष्ठान करवेसो परोक्षज्ञान और तत्काल शांतिदायक अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्तहै जायहै फिर पीछी शांतिप्राप्ति होयहै ऐसे सुखदायक धनकों यह पुरुष देहादिके निमित्त घरनमें वृथा खोय देयहैं न तौ याको विचार करैहैं और न शिरपर घूमती भई दुरंतवीर्य मृत्युकूंही देखैहैं ॥ १२ ॥

१ प्रयोजन यह है कि मैथुन मांस और मद्य इनमें प्रवृत्ति मनुष्यनकी है परंतु वेदवाक्यनसौं विधि नहीं पावैहै कोई कहै कि (ऋतौ भार्यामुपेयात् सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्) इत्यादि वाक्यनसौ विधि पावै है सो वो विधि नहीं है किंतु परिसंख्याविधिसो निषेधही है कि जो मैथुन करे तौ भार्याहीमें और फिर ऋतुमेंही करै तब वास्तवसौ रागप्राप्त नित्यमैथुनको निषेधही भयौ विधि नहीं ऐसेही सब विधिवाक्यनसे निषेध पायो यासौ निवृत्तही वेदाभिप्राय है इति ॥

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न
हिंसा॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न वि-
दुः स्वधर्मम् ॥१३॥ येत्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सद-
भिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते
च तान्॥१४॥द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्व-
रम् ॥ मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः
॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

औरहू वेदको तात्पर्य नहीं जाने हैं कि ऋतुके दिनहू स्त्रीसंग गर्भाधानहीको कह्यो है यथेष्ट कामभोगको नहीं कह्यो है, और सुराहूको पान नहीं कह्यो है, आघ्राण कह्यो है, पशुहीकी हिंसा देवताके निमित्त करे अपने लोभते हिंसा न करे, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्ति करि नहीं करै या सिद्धांतको ये मूर्ख नहीं जाने है ॥ १३ ॥ जे या धर्मको नहीं जाने हैं वे असाधु हैं अनम्र हैं अपनेकू साधुकरि मानलेय हैं, विश्वासकरि पशुनको मारे हैं, याके करेसूं मनोरथ होइगो ऐसो कहैहैं या जन्ममें वाको मांस यह खाइ है, अगिले जन्ममें याको मांस वह खाइगो, याहीते मांस याको नाम हैं ॥ १४ ॥ मृतक समान अपने और पुत्रादिकमें स्नेह करि बद्ध होइ परायेहू देहनमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसौ द्वेष करै हैं वे नरकमें परैहैं ॥ १५ ॥ जे अज्ञ हैं वे ज्ञानीनकी कृपाते तरे हैं जे मध्यवर्ती हैं नरकमें परे हैं, जे जे तत्वज्ञानको नहीं प्राप्त भये, जो मूढताको प्राप्त भये स्वार्थनिमित्त धर्म अर्थ काम करै है वे वारंवार जन्म मरण पावे हैं जे कैवल्यको तो प्राप्त नहीं भयेहै और मूढताको

१ अत्र मनुः । मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १ ॥

एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सी-
दन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७॥ हि-
त्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो
विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥
राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो
नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहो-
च्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता
द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः॥ नानावर्णाभिधाकारो
नानैव विधिनेज्यते ॥२० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो
वल्कलाम्बरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्ड-
कमण्डलू ॥ २१ ॥

अतीत है गयेहै ऐसे जे अक्षणिक त्रैवर्गिक है वे अपने आत्माकूं हनन करामैंहै ॥ १६ ॥ जे प्राणी आत्मघाती अशांत हैं अज्ञानहीको ज्ञान करि माने हैं, जे कृतकृत्य नहीं भये ते कालकरि नष्ट मनोरथ होइ दुःखही पावे है॥ १७॥ जे भगवान्‌तें विमुख हैं, अतिश्रमसो गृह पुत्र मित्र धन सबकों प्राप्त हैके इच्छा नहीं रहिवेपैहू नीच योनि अंधतममें परे हैं ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले आपने जो सब त्याग नारायणकी भक्ति करनी कही सो कौनसे समयमें कैसे वर्णके कैसी आकृतिके कौनसे नामसो कौनसी विधिसों लोकमें पूजे जाय हैं सो कहिये ॥ १९ ॥ तब करभाजन योगीश्वर नौमे प्रश्नको उत्तर देय हैं सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग इन चारि युगनमें नानावर्ण नाम आकार युक्त केशव अनेक विधिसों पूजिये हैं ॥२० ॥ सतयुगमें शुक्लवर्ण चतुर्भुज जटा धरे वल्कल वस्त्र धरे कारे मृगको चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष दंड

मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यज-
न्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥ हंसः सुपर्णो
वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरो मनुः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः
परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ
चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रु-
वाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं
हरिम् ॥ यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः
॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृ-
षाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे
भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ॥ श्रीवत्सादि-
भिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥

कमंडलु धरें ब्रह्मचारीके रूपसों दर्शन देय हैं, तैसेंई पूजियें हैं ॥२१॥ ता युगमें मनुष्य सब शांतरूप निर्वैर सुहृद समदृष्टि शम दम और ध्यान करिकैं देवकों पूजे हैं ॥ २२ ॥ ता कालमें इन नामन् करिकैं हरि गाये हैं, हंस, सुपर्ण, वैकुंठ, धर्म, योगेश्वर, मनु, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त, परमात्मा इति ॥ २३ ॥ त्रेतामें रक्तवर्ण चारि भुजा तीनि मेखला धरें, सुवर्णवर्णकेश, वेदत्रयीमयमूर्ति, स्रुक्स्रुवा यज्ञके साधनकों धरें ॥ २४ ॥ जे अतिधर्मात्मा वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं वे सर्व वेदरूप हरिको तीनिहूं वेदनके कर्मनकरि त्रेतामें पूजे हैं ॥२५॥ विष्णुयज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय ये नाम गाये जाय हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् श्याममूर्ति पीतांबर धरें, शंख चक्रादि श्रीवत्सआदि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धरें हैं ॥ २७॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥३१॥ कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! जो मनुष्य ईश्वरके जानवेकी इच्छा राखे हैं वे वा समयमें महाराजनके लक्षण संयुक्त वा महापुरुषकों वेद मंत्र और आगमके मंत्रनसों पूजे हैं ॥ २८ ॥ अब नाम कहैहैं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध रूप भगवान् तुमकों नमस्कार है ॥ २९ ॥ नारायणऋषि पुरुष महात्मा विश्वेश्वर विश्वरूप सर्वभूतनके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! ऐसी भांति द्वापरमें परमेश्वरकी स्तुति करै है, नाना आगम मार्गनकरिकैं कलियुगमेंहू जैसे पूजे है सो सुनिये ॥३१॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण है, कांति करिकैं अतिनिर्मल है, जैसी नीलमणि होयहै, ऐसे अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ और सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनंदनादिक समेत नामको कथन और स्तुति प्रधान पूजासों अति बुद्धिवंत अर्चन पूजन करे हैं ॥ ३२ ॥ पीछें स्तुति करे हैं

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥ मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

हे प्राणिनके रक्षक हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविंदकों नमस्कार है जो चरणारविंद सदा ध्यान करिवेकों योग्य है, इंद्रिय कुटुंबके संगते अनिष्टको दूरि करै है, मनके अभिलाष पूर्णकरै है, गंगादिक तीर्थके स्थानभूत है शिव ब्रह्मासो स्तुति किये भए हैं जे दीन हैंकैं विन चरणनकी शरण जायहैं तिन सवनके रक्षक है सेवककी पीडाको हरे हैं संसारसमुद्र तरिवेको नावरूप है ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप देवतानसोंहू न त्यागी जाय जाकी अभिलाषामेंहीं अमर रहैं हैं ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासौ छोडकै धर्मकी रक्षाके निमित्त वनको गये और प्रिया सीताके प्रेम और वचनसौ मायामृगके पीछे धाये विन भक्तप्रिय आपके चरणारविंदनको हम प्रणाम करै हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् जनक ! या भांति चारोंहू युगके नाम रूप भेद करि वा वा युगके मनुष्यनकरि कल्याणके दाता हरि भगवान् पूजे जायहैं ॥ ३५ ॥ अब चारोंहू युगनमें कलियुग श्रेष्ठ है यह कहै हैं, जे श्रेष्ठ गुणज्ञ सारग्राही हैं, वे कलियुगकी स्तुति करें हैं, और युगनमें ध्यान यज्ञ पूजा करि जो फल होय है, सो सब स्वार्थ कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्त्तन मात्रतेंई प्राप्त

न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो
विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥
कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम् ॥ कलौ
खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्व-
चित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी
नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च
महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबन्ति जलं
तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति
वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥

होयहै ॥ ३६ ॥ प्राणी देहके अभिमान करि संसारमें भ्रमें हैं तिनको याते और परम लाभ नहीं जो संसार नष्ट होइ, परमसुख शांति पावे, ताते कलियुगमें हरि कीर्त्तनते परे और लाभ नहीं ॥३७॥ हे राजन् ! सतयुगादिककी प्रजा कलियुगमें जन्म पामें ऐसे इच्छा करे है, जाते निश्चय करि कलियुगमें सर्व जीव नारायणपरायण होइगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कहूं कहूं महाराष्ट्रदेशमें भक्त होइगे, द्राविडदेशमें बहुत होइगे, जहां ताम्रपर्णी नदी कृतमाला और पयस्विनी हैं ॥ ३९ ॥ कावेरी परम पवित्र नदी हैं इन नदीनको जल पीमे हैं हे मनुजेश्वर ! वे मनुष्य निर्मलचित्त ह्वैके श्रीभगवान् वासुदेव विषे बहुधा भक्त

१ सोइ जब ऋषिनने कलियुग आयो देखो तब वेदव्यासजीके पास जायके बोले कि महाराज ! कलियुग आय गयो है अब कहा करें तब श्रीवेदव्यासजी सालिगरामको हाथमें लेके गंगाजीमें कमर २ जलमें खडे हैके ऋषिन प्रति बोले (हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥) तब सब ऋषिनने कीर्तनको ही कलियुगमें प्रधान मान्यौ ॥

२ दोहा-सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग ॥ जो गति होय सो नामजप, कलि महं पावहिं लोग ॥ १ ॥

देवर्षिभूतात्मनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च
राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं
परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं
कथं चिद्धुनोति सर्वं हृदि स न्निविष्टः ॥ ४२ ॥ नारद
उवाच॥धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः॥
जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत्
॥४३॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः॥
राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

हैं ॥ ४० ॥ जे मनुष्य सर्वथा भेद छोडिकैं केवल शरणदाता मुकुंद भगवान्के शरण जाय हैं तिनपै देवता ऋषि भूत कुटुंबी मनुष्य पितरको ऋण नहीं रहै है हे राजन् ! इनके अर्थ पंचयज्ञादिकनके करवेकीहू प्रबल विधि नहीं जो सर्वत्र एक हरिको. देखे हैं ॥ ४१ ॥ यदि यह संदेह करो कि सम्पूर्ण कर्म छोडिकै भजन करै तो कर्म छोडवेको पाप लगैगो याको समाधान यह है कि जो सब देवादिकनको छोडिकै एक हरिहीके चरण भजे हैं, ताको विकर्म सर्वथा न होइहै जो कदाचित्प्रमादते होइ तो वाके हृदयमें हरि बैठे हैं, वे यमादिकनहूके नियंता हैं, वाकेहू कर्म सब नाश करैं हैं ताते हरिको भक्त प्यारो है ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरनको संवाद कहिकै श्रीनारदजी बोले हे वसुदेव ! ऐसे भगवत धर्म सुनिके राजा जनक संतुष्ट ह्वैकें अपने गुरुनसहित जयंतीपुत्र योगीश्वरनकी पूजा करत भये ॥४३॥ ता पीछे वे योगीश्वर सम्पूर्ण मुनि सिद्ध लोकनके देखतेही अंतर्द्धान होत भये, राजा जनक वे धर्म करते परमगति पावत भये ॥ ४४ ॥

त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यते परम् ॥४५॥ युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६॥ दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

अब नारदजी वसुदेवसो कहैं हैं हे महाभाग वसुदेव ! तुमहू ये वैष्णवधर्म करो, सुनकर श्रद्धा करवेसो निःसंग होइ परम मंगल पाओगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकनकी रीति करी सब तुमसों कह्यो है तुम तो वसुदेवजी विनाही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो तुम दोऊ स्त्री पुरुष परम भागवत हो जिनके यश करि सब जगत् पूर्ण होइ रह्यो है, जाते तुह्मारे भगवान् ईश्वर पुत्र भये ॥ ४६ ॥ तुमको और लोकनकी भ्रांति सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मन करि चित्त शुद्ध करनो नहीं, दर्शन आलिंगन आलाप शयन आसन भोजन करि श्रीकृष्ण विषे पुत्रस्नेह करते तुह्मारे भगवान् ईश्वर आत्मा पवित्र भयो है ॥ ४७ ॥ जे शिशुपाल पौंड्र शाल्वादिक शय्या आसन आदिविषे जाको वैरसोहू ध्यान कर, श्रीकृष्णकी गति विलास चितवन आदि करि तदाकार भई बुद्धिसो सारूप्यमुक्ति पावत भये तौ जे स्नेहसों चित्त इनके स्वरूपमें राखे हैं, वे सारूप्य गति पावें तो यामें कौन अचरज हैं ॥ ४८ ॥

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ माया
मनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥४९॥ भूभारासु-
रराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम्॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्यै
यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ ॥श्रीशुक उवाच॥
एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः॥ देवकी
च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥५१॥ इतिहास-
मिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः॥ स विधूयेह शमलं
ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५२॥ इति श्रीभागवते महा-
पुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अहो जो पुत्रस्नेह मुक्तिको कारण है तो सबही मुक्त होने चाहिये तहां कहैं हैं, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मति राखो, ये तो सर्वात्मा ईश्वर हैं मायाकरि मनुष्यसे दीखेहैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनको गुप्त है, ये श्रीकृष्ण अविनाशी परम पुरुष है ॥४९॥ पृथ्वीको भाररूप असुरराजानके मारवेको साधूनकी रक्षा करिवेको मोक्ष देवेको अवतार लियो है, लोकनमें यश विस्तार करै है ॥५०॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसो कहै हैं हे राजन् ! यह सुनि महाभाग वसुदेवजी और देवकी आश्चर्य पाइ अपने आपको मोह स्नेह छोडत भये ॥५१॥ यह इतिहास अतिपुण्यहै जो याको नेमसो मनमें धरैहै सो याही देहविषें मोह दूरिकर ब्रह्मभावकों प्राप्त होइहै ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतो-
ऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः
॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥
ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः
पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसं-
जग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलो-
कमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापह-
म् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धि-
भिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

छठे अध्यायमें ब्रह्मादिक जब स्तुतिकर चले गये, तब उद्धवने विनंति करी कि मोहूको अपनें धाम लेचलो, यह प्रार्थना उद्धवजी करेंगे ॥ शुकदेवजी राजापरीक्षितसों कहें हैं या प्रकार वसुदेवजीसों नारद कहिगये, ता पीछें द्वारकामें ब्रह्मा सनकादिक और संपूर्ण देवता ऋषि मिलिकें आवतभये, भूतनके ईश्वर महादेव भूतगणनसों सहित आवतभये ॥१॥ देवतानसो सहित भगवान् इंद्र आये आदित्य वसु अश्विनीकुमार ऋभु अंगिरा रुद्र एकादश विश्वेदेवा साध्य ॥ २ ॥ गंधर्व अप्सरा नाग सिद्ध चारण गुह्यक ऋषि पितर विद्याधर किन्नर ये सब श्रीकृष्णके दर्शनकों द्वारकामें आवत भये तहां पूछे हैं, स्वर्गमें उपेंद्ररूप भगवानको नित्य देखें हैं, यहां कहा विशेष है जो देवता आवतभये ॥ ३ ॥ तहां कहें हैं जा देहसौं भगवान् मनुष्यलोकमें परम सुंदर मूर्तिसौ सब लोकनके पाप दूरि करवेवारे यशको विस्तार करत भये ता अतिसुंदर मूर्ति देखिवेकों आवत भये ॥ ४ ॥ परम शोभा कारि धनी पुरुषनसौ अतिसमृद्ध, द्वारकामें आइ अतृप्त नेत्र देवता

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ॥ गीर्भि-
श्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥६॥ देवा ऊचुः ॥
नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोव-
चोभिः ॥ यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः
कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि
दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ॥
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यव-
हितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

अद्भुतरूप श्रीकृष्णको देखतभये ॥ ५ ॥ पीछे नंदनवनके फूलनसों श्रीकृष्णको पूजतभये विचित्र पद और अर्थयुक्त वाणीनकरि जग-दीश्वरकी स्तुति करतभये ॥ ६ ॥ सो संपूर्ण स्तुति कहें हैं, हे नाथ ! हम तुम्हारे चरणारविंदको नमस्कार करें हैं जे जीव कर्मरूप बडे पाशतें छुट्यो चाहे हैं, वे बुद्धि प्राण इन्द्रिय मन वचनसों भावयुक्त होइकें जिनको हृदयमें सदा चिंतवन करें हैं परन्तु तौहू दर्शन नहीं पावे हैं हम तुम्हारो प्रगट दर्शन करें हैं यह बडो हमारो भाग्य है ॥७॥ तहां एक तर्क करें हैं मोक्षके लिये मेरे चरणको चिंतवन काहेकों करोहों, मैं तो अनेक दुष्टकर्म करोहों, मेरे तो कर्म छूटेहीं नहीं तो विनके कर्म क्यों छुडाऊंगो (तहां कहें हैं) हे अजित ! तुम ऐसी बात मति कहो औरनपै मनहूंकरि जान्यो न जाई ऐसे महत्तत्त्वआदि प्रपंचकों त्रिगुण अपनी माया करि आपुहीमें उपजावोहो पालोहो, संहारोहो, तुम मायाके गुणनमें नियंता करि स्थित हो और इन कर्म-नकरि लिप्त नहीं होउ हो जातें रागादिरहित हो, और नित्य अपने अव्यवहित आनंदस्वरूप विषें मगन हो याहीसों जितने दोष हो तिनसों रहित हो ॥ ८ ॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥ स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः॥ यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा॥अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥

तो मोकों कर्म करिवेको कहा प्रयोजन है मैं तो आत्माराम हों (तहां कहें हैं) हे स्तुतियोग्य हे परमश्रेष्ठ देव! विषयिनकी चित्त विद्या श्रवण अध्ययन दान तप कर्मनकरि तैसे नहीं शुद्धि होय है जैसी साधुनके चित्त तुह्मारे यश श्रवण करि शुद्धि होय है॥९॥ अब प्रार्थना करें हैं तुह्मारे चरण हमारे अशुभवासना जराइवेको अग्नि होउ जा चरणको सब मुनि प्रेमकरि कोमल हृदय होइ मोक्षके अर्थ ध्यान करें हैं, और भक्तजन सारूप्यमुक्तिकी इच्छा करि वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूह करि तीन कालमें पूजे है, और तिनहु विषे जे ज्ञानी हैं वे इन्हीसों स्वर्गको उल्लंघन करिकै वैकुंठ जाइवेके अर्थ पूजिये हैं ॥ १० ॥ हे ईश! जिन तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोरि यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधि करिकै हविको लेकरि चिंतवन करें हैं, और योगिराज अध्यात्मयोगकरि तुह्मारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य्य जानिवेकों चिंतवन करैहै, और परम भक्त सर्वत्र पूजे हैं॥ ११ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥ नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

हे विभो ! तुह्मारे सब अंगनमें व्याप्त वनमालासो भगवती लक्ष्मीजी सौतिकीसी ईर्षा राखे हैं, यह वनमाला भक्तनने अर्पण करी है या हेतुतें जो तुम धारण करोहो औरहू कहे है कौन विनको मालानकरिकैं पूजाको ग्रहण करोहो तुह्मारे चरण हमारी विषयवासना जराइवेको अग्नि होउ ॥ १२ ॥ जब तुम त्रिविक्रमरूप भये तब तुमने बलिराजा बांध्यो, तब तुह्मारो एक चरण सत्यलोकमें रह्यो, सो जैसे विजय पताका होइ तैसे लगे हैं चरणते गंगाजूके तीनि प्रवाह छूटे, ते पताका भई चरणध्वज दंड भयो, सो सुर असुर सबनकी सेनाको भय अभयको दाता भयो; देवतानकों और साधुनको अभयको दाता स्वर्ग दीनों, असुरकों और दुष्टनको भयदायक अधोगति दीनी, हे सर्वव्यापक ! तुह्मारे चरण हम भक्तनकों पापतें रक्षा करे ॥ १३ ॥ कदाचित् कहो युद्धमें देवता दैत्य परस्पर जीते हैं, हारे हैं मेरो तहां कहा निमित्त है तहां कहे हैं, ब्रह्मा आदि ले देहधारी सब जगत् परस्पर युद्ध करि पीडित होय हैं तब तुह्मारे वश होय हैं, जाते कालरूप तुम हो, कालके आधीन सब है जय पराजय आपके

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥
त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥
तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान्॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

आधीनही है, जैसे नाथके आधीन बैल है तैसे सब तुम्हारे आधीन हैं; तुम प्रकृति पुरुषहूते परे हो, पुरुषोत्तम हो, तुह्मारे चरण हमको सुख करे ॥ १४॥ अब पुरुषोत्तमकों कहे हैं तुम या जगत्के उत्पत्ति पालन प्रलयके कारण हो, प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वहूके नियंता हो, यह काल संवत्सररूप है, सो चक्ररूपहैं, ताके ग्रीष्म वर्षा शरद तीनों नाम हैं, सबके नाशकों प्रवृत्त है, गंभीर याको वेग है सो काल तुह्मारो रूप है, तातें तुम उत्तमपुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिको प्रकार कहे हैं, प्रथम तुमते सफलवीर्य एक पुरुष होय है सो पुरुष तुमतें शक्तिको पाइ मायासों मिलि विश्वको गर्भरूप महत्तत्त्व उपजावे है सो महत्तत्त्व मायासों मिलि आत्मातें यह स्वर्णमय अंडकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजै हैं ॥ १६ ॥ जातें सब तुमतें प्रकट भयो है याही कारणसो या स्थावरजंगम विश्वके अधीश तुम हो हे संपूर्ण इंद्रीनके पति! मायाकरि उपजी इंद्रियवृत्ति कोरैंके विषयभोग करतेहू तुम निर्लेप रहो हो जे योगीश्वर योग करि विषय छोडे हैं तोहू डरपैहैं कि कदाचित् हमको विषयवासना न उपजे, तुम प्रपंचसों

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौ-
रतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ वि-
भ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजस-
रितः शमलानि हन्तुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिर-
ङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति
॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः
शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्या-
म्बरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावतारा्य
पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्त-
थैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

मिलि रहे हो और विषयसंबंध नहीं यह तुह्मारो विशेषधर्म है ॥ १७ ॥
सोलह सहस्र स्त्री अपनें मंदहास सहित चितवनिके कटाक्ष करि
दिखाये अभिप्रायसो विनके मनको हरवेवारे भ्रूमंडलसो प्रेरे संभोग
मंत्रनविषें निपुण, कामके बाण और कामकी कलासैहू जो तुह्मारे
मनकों वश न करि सकी, तौ तुम विषयनसो निर्लिप्तही हो ॥ १८ ॥
तातें तुह्मारी अमृतरूप कथाजल भरी कीर्तिरूप नदी, और तुह्मारे
चरणोदक रूप गंगा ये दोऊ त्रिलोकीके पाप दूरि करिवेको समर्थ हैं,
श्रवणेंद्रियनकरि वेदमें गाये तुह्मारे यशके सुनेतें सब पाप नष्ट होय
हैं, गंगाके स्नान करेते पाप सब जाय हैं, ताते धर्म जानें हैं ते ये
दोऊ तीर्थ सेवे हैं ॥ १९ ॥ याप्रकार ब्रह्मा महादेव सहित देवतानसों
मिलि स्तुति करि नमस्कार कर आकाशहीमें ठाढे श्रीकृष्णजीसों
बोलत भये ॥ २० ॥ हे प्रभो ! हे सबके अंतर्यामी ! हमने भूमिके

श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता, व्युत्तिष्ठन्तीह
र्वतः॥ शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्य
हि॥३४॥ न वस्तव्यमिहास्माभि कीर्तयन्तश्च तरि-
मनुष्यमासं सुमहत्पुण्यं यास्या ऽवतीर्णस्य भवतः
ष्यन्त्यञ्जसा दक्षशापाद्गृही य पञ्चविंशाधिकं
पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीय ारदेवकार्यावशेषि-
प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखि मभूदिदम् ॥२६॥
तम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्राय
ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलो-
काँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठकिंकरान् ॥ २७॥

भार दूरि करिवेके लिये पहिले तुमसो विनती करीही सो भार तुमनें तैसेई दूरि कियो ॥ २१॥ संतनमें धर्म स्थापन कियो, साधुनमें सत्य राख्यो, सबनके पाप दूरि कर कीर्ति दशो दिशानमें विस्तारी॥२२॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तम रूप धारि जगत्के हितके अर्थ अति उदारचरित्र कर्म करत भये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मनको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्तन करते सुखपूर्वक संसारको तरेंगे ॥२४॥ हे विभो हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसो पचीस वर्ष वीते है॥ २५ ॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोऊ देवकार्य्य करनो नहिं रह्यो, और यह तुह्मारो कुलहू विप्रशापते नष्ट ह्वै रह्यो हैं ॥ २६ ॥ ताते जो तुह्मारे मनमें आवे तो अपने वैकुंठ धामको पधारो, हे वैकुंठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर है, लोकसहित लोकपालनकी रक्षा करो ॥ २७ ॥

.याावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौ-
रतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ वि-
स्यस्तवामतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजस-
हत्य हतानां यद्धन्तुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिनेन
लोकोऽयमुद्धेलेन द्रुयं शुचिषदस्त . इदानीं नाश
आरब्धः कुलस्य .वाच ॥.न्वतः ॥ यास्यामि भवनं
ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यु-
क्तो लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तम् ॥ सहदेव-
गणैर्देवैः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महो-
त्पातान्द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवा-
नाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥

तब भगवान् बोले हे देवतानके ईश्वर ! तुमने कही सो मैंने मनमें धारी तुम्हारो संपूर्ण कार्य कियो, भूमिको भार उतारचो ॥ २८ ॥ परंतु यह यादवकुल बल शूरता श्रीकरि अति उद्धत है, लोककों ग्रस्यो चाहे है परि मैं रोकूहूं जैसे मर्यादाकरि समुद्र रोक्यो है ॥२९॥ जो मैं ऐसे गर्वसो उद्धत या यादवके विशाल कुलको संहार किये विना जाउ तो यह लोकमर्यादारहित या यदुकुल करि नष्ट होइगो ॥ ३० ॥ सो विप्रशापतें या कुलके नाशको अब आरंभ कियो है, हे ब्रह्मन् ! इनको संहार करिकैं वैकुंठ जाउँगो, हे निष्पाप ! तुम्हारे घर आउँगो ॥ ३१ ॥ लोकनके नाथ श्रीकृष्णकी ऐसी वाणी सुनि स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार करि देवतानसों मिलि अपने धामकों जात भये ॥ ३२ ॥ पीछे वा द्वारकामें उठे बडे उत्पातनकों देखि

श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता ह्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः॥ शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥३४॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम्॥३६॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ॥ ३७॥ तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनन्दन ॥ गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

मिलिकरि भये यदुवृद्धनसों भगवान् बोले ॥ ३३ ॥ सब ओरते यहां वडे उत्पात उठे हैं, हमारे कुलकों निवारणके अयोग्य ब्राह्मणकों शापहू भयो है ॥३४॥ हे यादवहो ! जो जीवेकी इच्छा है तो हमकों यहां वसिवो नहीं चहिये अतिपुण्य प्रभासतीर्थकों आजही चलो, विलंब मति करो ॥ ३५ ॥ जा तीर्थमें स्नान करिकैं दक्षके शापतें क्षयरोग करि ग्रस्यो चंद्रमा पापते छूटो, और तत्काल फीरे कलानकी वृद्धि पाई ॥ ३६ ॥ हमहूं तहां स्नान करि देवता पितरनकों तर्पण करि अनेक गुणसंयुक्त अन्नकरि उत्तम ब्राह्मणनकों भोजन करवाई ॥३७॥ श्रद्धा करि महान् सत्पात्रनविषें बीज बोइ, तिन दाननकरिकै पापनको तरैंगे, जैसें नावकरि समुद्र तरै है ॥ ३८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! या भांति जब श्रीभगवान्नें आज्ञा दीनी तब

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वा-
ऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ वि-
विक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शि-
रसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥४१॥ उद्धव उवाच॥
देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं
नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि
प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणा-
र्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम
नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां
परममङ्गलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्य-
स्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

---

* यादव चलिवेकों उद्यम करत भये. तीर्थके लिये रथ जोरि सिद्ध कीने
॥ ३९ ॥ हे राजन् ! ता समय यादवनकों प्रभासयात्राकों उद्यम देख
और श्रीकृष्णके वचन सुनि और घोर उत्पातनको देखि नित्य
श्रीकृष्णकों समीप रहिवेवारे उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांत विषें निकट
जाइ जगतके ईश्वरनके ईश्वरके पायनकों माथेसों नमस्कार करिकै
हाथ जोरि बोलत भये ॥ ४१ ॥ हे देवदेवेश हे योगेश हे पुण्यश्रवण-
कीर्तन ! तुह्मारी ऐसी इच्छा जानी जाइहै कि या कुलकों संहार
करिके निश्चय करि भूलोकको छोड्यो चाहोहो, जातें तुम ईश्वर
संपूर्ण कार्य्य करवेकों समर्थ हो पर विप्रशाप न निवार्‍यो ॥ ४२ ॥
हे केशव हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोडिवेकों अर्द्धक्षणहू
उत्साह नहीं करोहौ, मोहूको तुम अपने धामको ले चलो ॥ ४३ ॥ हे
कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्यनकों परम मंगलदायक हैं श्रवणेन्द्रियको

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥४७॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलिर्यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥

अमृतरूप है, ताकों आस्वाद लेकें मनुष्य औरकी इच्छाकों छोडै है, हम तुम्हारे दिन रात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन आसन गमन स्नान क्रीडा भोजनकों आदि ले औरहू क्रियानमें सदा संग रहैं हैं; ते हम भक्तप्रिय आत्मारूप तुमकों कैसे छोड़िसकें ॥ ४५ ॥ तुह्मारे समीप तुह्मारे प्रसादकी माला सुगंध चंदन प्रसादी वस्त्रसौ चर्चित होइके बाह्य शुद्ध होयहै, पीछें तुह्मारो उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनकरि अंतरशुद्धि करिकें तुह्मारी मायाकों जीते हैं ॥ ४६ ॥ जे वायु भक्षण करि रहे हैं, दिगंबर हैं शमयुक्त हैं जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं, आत्मविद्यामें जिनने श्रम कियाहै, वे ऋषि अनेक क्लेश करि तुह्मारे वैकुंठधामको पावे हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुह्मारे भक्तनके संग तुह्मारी वार्त्ता करते सकल कर्मनमें भ्रमतेहू दुस्तर तुह्मारी मायाको तरेंगे ॥४८॥ मनुष्यलोकनकों आश्चर्यदायक तुह्मारे कर्म वचन गावते हास्य चितवनि हास्यकी वार्ता और जो

श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ॥ एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्ववीसं मेऽभिकाङ्क्षिणः॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः॥ तदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥

कछु मनुष्यलोकमें लीला करी है वाको स्मरण कीर्तन करैंगे यासोंही तरजायेंगे मैं यह मायाके भयसौं प्रार्थना नहीं करूंहूं परन्तु आपको संग छोडो नहीं जाय है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! या भांति उद्धवजीकी विनती सुनि भगवान् श्रीकृष्ण सदा निकटवर्ती परम प्रिय भक्त उद्धवसों बोलतभये ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कंधेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उद्धवके ज्ञानकी सिद्धिकों हरि आपु अवधूतके इतिहास करि कहैं हैं, गुरुनविषे आठ गुणनकों सातवें अध्यायमें वर्णन करैंगे ॥ श्रीकृष्ण उद्धवसों कहैं हैं हे महाभाग ! उद्धव! तुमने जो मोसों कह्यो सो सब मोको करनोइ है, ब्रह्मा महादेव लोकपाल ये सब स्वर्ग जाइवेके अर्थ मेरी प्रार्थना करि गये हैं ॥ १ ॥ मैंने यहां वह सब देवकार्य सिद्धि कियो, जाके अर्थ ब्रह्माकी प्रार्थनासों बलदेवसहित मैं अवतर्‍यो हों ॥ २ ॥

कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमङ्गलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्म विकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

हमारो कुल रह्यो है सो शाप करि जरि रह्यो है, तातें निश्चय-कर परस्पर विग्रहनतें नष्ट होइगो, और आजुतें सातवें दिन या पुरीको समुद्रडुबावेगो ॥ ३ ॥ जा दिन मैं या लोकको छोडोंगों, तादिन यह नष्टमंगल होइगो, हे उद्धव ! फेरि कलियुगहू प्रवृत्त होइ करि सब धर्म दूरि करैगो, थोरेही कालमें या लोकको निरादर करैगो ॥ ४ ॥ मेरे त्याग किये महीतल विषें तुम मति वसिवो, हे उद्धव ! कलियुगमें मनुष्यनकी प्रीति अधर्ममें होइगी ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! तुम तो स्वजन बंधु कुटुंबमें सब स्नेह छोडि मेरे स्वरूपमें चित्त राखि समदृष्टि ह्वैकें पृथिवीमें फिरो ॥६॥ या संसारमें दृष्टि मति राखियो, वचन नेत्र श्रवणादिक करिकें जो ग्रहण कियो है सो सब झूंठो मायाकों रच्यो यह मनहू मिथ्या है यह जानो ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्तवारे पुरुषकों वेदार्थ अनेक भांति दीखे हैं सो भ्रमें हैं,

तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥१० ॥ दोषबुद्ध्या भयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥

गुणदोषसंयुक्त हो कर्म अकर्म विकर्म भेद गुणदोष बुद्धिवारेको हैं समदृष्टि आत्मज्ञानवंतको यह भेद नहीं ॥८॥ तातें तुम तो उद्धवजी सब इंद्रियवश करि चित्त अपने वश कारि या विशाल जगत्को अपनपेमें देखो, आपुको परमेश्वरमें ब्रह्मरूप करि देखो ॥ ९ ॥ जो कहो कि विघ्न बहुत हैं कैसें देखो ताको उत्तर है,वेदके अभिप्रायको निश्चय और वाके अर्थको अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसौही संतुष्ट और देवता आदिहू आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न नहीं करेंगो जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न होय तबतक वर्णके अनुसार कर्म करे अनुभव प्राप्त हैवेपै विघ्नसौ कछु नहीं होयहै ॥१०॥ गुण दोष बुद्धिते रहित भयो यह पहिले कर्मनके संस्कारतें निषिद्ध कर्मनते विवर्त होयहै, किन्तु न दोष बुद्धिसो बहुधा विहित कर्मको करैहैं न गुण बुद्धिसो जैसे बालक गुण दोष विचारिके कर्म विकर्ममें प्रवृत्त निवृत्त नहीं होय है ॥११॥ सब प्राणीनको मित्र होइ, ज्ञान विज्ञानको निश्चय होइ सब विश्वको मेरो रूप करि देखे,तब फेरि संसार न पावे॥१२॥शुकदेवजी

उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविंन्यास योगात्मन् योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥१४॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामानां विषयात्मनिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ॥ तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन् ननु शाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥

राजा परीक्षितसों कहै हैं हे राजन् ! भगवाननें ऐसे समझायो परम भागवत उद्धव प्रणाम करि तत्वज्ञानकी इच्छा करि श्रीकृष्णसों बोलत भये ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले हे योगके फलदाता, हे योगके आधार, हे योगरूप, हे योगके कारण ! मेरे मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूप त्याग मोसों कह्यो, सो अपनी सहज दयातें कह्यो, मैं तो ऐसो अधिकारी नहीं हूं ॥ १४ ॥ हे सर्वव्यापक हे सबके आत्मा ! यह विषयनको त्याग सकामी पुरुषनको अशक्य है और जो तुम्हारे भक्त नहीं है तिनको विशेष करि अति कठिन है मेरी बुद्धि तो यह कहैहै ॥ १५॥ जो मोसों तुम त्याग कहो हो, महाराज मैं तो अहंता ममता करि मूढमति हों तुह्मारी माया करि उपजे पुत्र कलत्र देह आदिमें मग्न हो हे भगवन् ! तातें जैसे यह सब तुह्मारो कह्यो मैं विना परिश्रम सदा करिसको तैसी मोको तुम शिक्षा देउ ॥१६॥ तुम समानरूप हो

तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठ-
विकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभि-
तप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥ श्रीभग-
वानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्ष-
णाः ॥ समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्
॥१९॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्
प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥

स्वप्रकाश हो आत्मा हो, हे ईश ! तातें मोको और ऐसो वक्ता देवतानमेंहू कोऊ नहीं देखिपडे है, ये ब्रह्मादिक देहधारी तो तुह्मारी माया करि मोहितबुद्धि हैं, बाहरके विषयनमें इनकी अर्थ बुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई एक प्रभु दुष्टशील है कोऊ एक ऐसे है जो सेवा करवेसौं फल काल विषें नष्ट होय हैं कोऊ अज्ञानी हैं कोऊ रक्षाविषें असमर्थ हैं कोई स्थानभ्रष्ट हैं तातें संसारदुःखते अतीत नहीं मैं अतिविरक्तचित्त हों तुह्मारी शरण आयोहूं तुम तो निंदा रहित हो तुह्मारो कालतें अंत देशतें पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो, तुह्मारे नाश रहित वैकुंठस्थान है, तुम सब जीवनको आश्रय हो, जीवके सखाहो ॥ १८ ॥ तब श्रीभगवान् बोलते भये जे लोक तत्वको अतिश्रेष्ठ जाने हैं, मनुष्य बहुधा गुरु विना आपही अपने आत्माको संसारसों उद्धार करते हैं गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥१९॥ अपनों गुरु आपही है, विशेष कर पुरुष जो यह प्रत्यक्षकारि अथवा अनुमान कारि विचारे तो आपहीतें सुख पावे सहजसौ अपने स्वरूपकी प्राप्ति होय पशुनकों अपनें हितज्ञानकों कौन गुरु है आपुहीतें अपनें हितमें प्रवृत्त होय है,तातें आपकों आपुही गुरु है तहां प्रत्यक्षज्ञान दिखामें हैं जब जीव पुरुष जन्म पावै हैं तब यह ज्ञानमार्गमें

पुरुषत्वे च मां धीराः साङ्ख्ययोगविशारदाः॥ आवि-
स्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम्॥ २१ ॥ एक-
द्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ॥ बह्व्यः सन्ति
पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२॥ अत्र मां
मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम्॥ गृह्यमाणैर्गुणै-
र्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥२३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीम-
मितिहासं पुरातनम्॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमित-
तेजसः ॥२४॥ अवधूतं द्विजं कंचित् चरन्तमकुतोभ-
यम्॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित्
॥२५॥ यदुरुवाच॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुवि-
शारदा॥यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत्२६

निपुणहोय है ॥ २० ॥ मनुष्य शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है यह सांख्ययोगमें चतुर बुद्धिवारे धीर पुरुषनको निश्चय है ॥ २१ ॥ वे शक्तियुक्त मोकों प्रत्यक्ष देखे हैं मेरे उपजाये बहुतरूप शरीर हैं कोऊ एक चरण है, कोऊ अर्द्ध चरण है, कोऊ नीचे चरण हैं, कोऊ चारि चरण है कोऊ बहुत चरण है, कोऊ चरणरहित है, तिन सबनमें जो पुरुषरूप देह है सो मोकों प्रिय है ॥ २२ ॥ या पुरुष देहमें जे सावधान हैं ते अहंकारादिकनतें रहित मोको प्रगट ढूंढे हैं बुद्धि आदि यत्ननकों एक स्वप्रकाश आत्मा विना प्रकाश नहीं होसकै है ऐसो अनुमान करि ढूंढैहैं ॥ २३ ॥ या विषयमें बडे तेजस्वी राजा यदुको और अवधूतको यह संवादरूप प्राचीन इतिहास कहै है ॥ २४ ॥ एक ब्राह्मण पंडित तरुण वेष फिरते २ सर्वत्र निर्भय रहे ताको देखिके धर्मके ज्ञाता यदु पूछत भये ॥२५॥ हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतु-
नैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु
कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेह-
से किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्य-
मानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो
गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां
ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य
भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं
महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः
प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ३१ ॥

तुमकों ऐसी निपुण मति कहांतें भई है, जाको पाइकरि अवधूत पंडित तुम बालककी भांति या लोकमें विचरे हो ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य अर्थ धर्म कामना विषें और आत्माके विचार विषें आयुर्दाय कीर्ति श्रीकी कामनाकरि प्रवृत्त होयहैं ॥ २७ ॥ तुम कछु नहीं चाहो हो, न कोऊ कर्म करोहो, जड उन्मत्त पिशाचकी भांति हो, और सब कार्य कारणकों समर्थ पूरण ज्ञानवान हो, अति प्रवीण हो, सुंदर हो, उत्तम मधुर वाणी है ॥ २८ ॥ मनुष्य काम लोभ रूप दावानल करि जरे हैं, तामें तुम वा तापसों संतप्त नहीं हो जैसे अग्नितें छूट्यो गंगामें ठाढो हाथी वा तापसों तप्त नहीं होइ हैं ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोग रहित हो कलत्र आदिकर शून्य हो, आनंद-रूप हो, हम तुमको पूछे हैं तुह्मारे आनंदको कारण कहाहै, सो हमसों कहो ॥ ३० ॥ तब श्रीकृष्ण उद्धवजीसो कहै हैं हे उद्धव ! अति ब्रह्मण्य सुबुद्धि राजाने यदु विनयपूर्वक पूजा करि पूछे तब

ब्राह्मण उवाच॥ सन्ति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्यु-
पाश्रिताः॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ता-
ञ्छृणु॥ ३२॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा
रविः॥ कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः॥
॥ ३३॥ मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः॥
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्॥ ३४॥
एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः॥ शिक्षावृ-
त्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः॥३५॥ यतो यदनु-
शिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र
निबोध कथयामि ते॥ ३६॥ भूतैराक्रम्यमाणो
ऽपि धीरो दैववशानुगैः॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गा-
दन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम्॥ ३७॥

महाभाग अवधूतजी यदु राजासो बोलते भये॥ ३१॥ हे राजन्! मेंने अपनी बुद्धि करिकै बनाये ऐसे मेरे बहुत गुरु हैं, जिनते मैं बुद्धि पाइकरि मुक्त भयो हों, या लोकमें फिरोहो तिनको सुनो॥ ३२॥ पृथ्वी १ वायु २ आकाश ३ जल ४ अग्नि ५ चंद्रमा ६ सूर्य ७ कपोत ८ अजगर ९ सिंधु १० पतंग ११ मधुकृत् १२ गज १३ ॥ ३३॥ मधुंहा १४ मृग १५ मीन १६ पिंगला १७ कुररपक्षी १८ बालक १९ कुमारी २० कडेंडो २१ सांप २२ मकरी २३ भृंगी २४ ॥ ३४॥ हे यदुराज! मैंने चौवीस गुरू सेवन किये हैं, इनके आचरण करिकें आपकों सीखिवे योग्य अर्थ सीखत भयो॥ ३५॥ हे ययातिके वेटा हे पुरुषसिंह! जहां जातें जो जैसी शिक्षा लिनी हैं सोतैसी कहोंहों तुम सुनो॥ ३६॥ तहां पहिलें भूमिते क्षमा सीखी है

१ मुहारकी माखी॥ २ भोरा॥ ३ चील॥ ४ वाण सुधो करनवारो कारीगर॥

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

सो कहें हैं पृथ्वीकों सब प्राणी खूंदते हैं तोहू यह अपने नियमसे चलायमान नहीं होय है ऐसेही दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट देय है तोहू विनके दैवाधीनपनको जान्वेवारे वा पुरुषको अपने नियमसों चलायमान होनों उचित नहीं यह पृथ्वीते सीख्यो है ॥ ३७ ॥ पृथिवी दो भांतिकी है एक तो पर्वतरूप एक वृक्षरूप तहांते जो सीख्यो है सो कहें हे पर्वतकी जो वस्तु है वृक्ष तृण झिरणा फूल फल वे सदा पराये अर्थ हैं, और पर्वतको केवल जन्महू परायेही अर्थ है, अपने स्वार्थ कछु नहीं, तैसे अपनी वस्तु सब देह परोपकारार्थ करिये यह पर्वतरूप भूमितें सीखो हैं, और वृक्षहू पराये आधीन है जो कोऊ काटे उखारे तोहू वे वृक्ष सहे है वैसें साधुहू जो कोउ अपने संग भलौ बुरौ करै वाको सहैं हो ॥ ३८ ॥ अब वायुको कहे हैं पवनहू दो भांतिकी है एक तौ प्राणरूप है दूसरी बाहर फिरैं हैं तहां प्राण जैसे आहारमात्र करि संतुष्ट रहे हैं, और इंद्रियनके भोग नहीं चाहैं है, तैसे मुनीश्वरहू रहैं आहार जो न मिले तो मन वचन विक्षिप्त ह्वैकें ज्ञान सिद्धि न होइ तातें एक आहार मात्रतें संतोष मानिलेइ, यातें अधिक न चाहैं, यह विद्या प्राणवायुतें सीखी हैं ॥ ३९ ॥ जैसें पवन सर्वत्र चलेहैं पर कहूं आसक्त नहीं होयहै ऐसें योगिराजहू शीत उष्ण आदि नाना धर्मवारे विषयभोग सेवन करतोहू आसक्त न होइ सबमें

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक्॥ ४१॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत्॥४२॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः॥न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान्॥४३॥

गुणदोषरहित मन होइ, यह बाहिरकी वायुतें सीखो है ॥४०॥ औरहू एक बात पवनतें सीखीहै सो कहैं हैं वायु सुगंधसों मिलीही चले है, ऐसे जानी जाइहैं परंतु वायु गंधसो मिल्यो नहीं, गंध कछू वायुको गुण नहीं, पृथिवीको गुण है, तैसे आत्मा पृथिवीके विकार देहमें प्रविष्ट है देहके धर्मको आश्रय है, पर मिल्यो नहीं, देहनतें न्यारो है ऐसें समझे सब ठौर आत्माहीकों देखे यह विद्याहू पवनतें सीखी तातें वायु गुरु भयो॥ ४१॥ अब आकाशतें सीखी विद्या कहैहैं जैसें आकाश सर्वत्र व्यापक है बडो है, और घटमें छोटो देखियेहै परि घटसौं आकाशको संबंध नहीं, वह निर्विकार है तैसें आत्मा या देहमें है, और यह देहसों मिल्योहै तातें इतनोइ है, और ठौर नहीं ऐसें न समझे; जो आत्मा देहमें है सोइ सर्वत्र है, जैसें आकाश सब ठौर है तैसे स्थावर जंगम विषें ब्रह्म व्यापक है और घडाके फूटवेमें आकाश नहीं फूटै ऐसैही देहके नाशमें आत्माको नाश नहीं होयहै आकाशतें यह एक विद्या सीखीहै॥ ४२॥ द्वितीय वायु कहै जैसें पवनके प्रेरेतें तेज जल पृथिवीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होयहैं पर मेघादिकनसों आकाशको स्पर्श नहीं वह निर्लेप हैं तैसें यह पुरुष कालकरि सृजे पंचभूत रूप या देहसों संयुक्त है, विनको विनके संगस्पर्श नहीं है ये धर्म आकाशते सीख्यो॥ ४३॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥
तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः॥सर्वभक्षोऽपि
युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः
क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुङ्क्ते सर्वत्र
दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥४६॥ स्वमायया सृष्ट-
मिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्व-
रूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥

जलतें सीख्यो से कहेहैं, जैसें स्वभावहीतें जल अति निर्मल है तैसें मुनिहू निर्मल होइ,सबके ऊपर स्नेह करे, मीठो बोले जलहू मधुर है जैसें जल तीर्थ स्थान है मनुष्यनकों पापतें छुडावेहै तैसें मुनीश्वरहू दर्शन स्पर्शन कीर्तन करि सबनकों पवित्र करैं ये गुण जलते सीखो है ॥४४ ॥ अब अग्निकी शिक्षाकहैहै जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजकरि दीप्त है, अति दुःसह है, और वाकौ उदरही पात्र है जो होम करैहैं सो अग्निके उदरहीमें डारे हैं तातें वही पात्र है, संपूर्ण वस्तुको भखेहै, तोहू पवित्र करनवारी है तैसे मुनीश्वरहु होई ॥ ४५ ॥ और अग्निको धर्म कहैं जैसें अग्नि कहूं गुप्त है कहूं प्रगट है जे अपनो कल्याण चाहैहैं तिनकों उपास्य है, दाताकी इच्छासो सर्वत्र हविष्य लेइहै, विनके भूत भावी वर्त्तमान पाप सब दूरि करै है तैसे मुनि रहै ॥ ४६ ॥ औरहू अग्नितें सीख्यो है जैसे अग्नि एक रूप है बहुत ईंध-नसैं बहुतभांति बडी दीखेहै, थोरे भये छोटी दीखेही है ऐसेंही जीवात्मा एकरूप है, न छोटो हैं न बडो है, अपनी अविद्या करि उपजाये ऊंच नीच भेद संयुक्त देहमें प्रविष्ट भयो ऊंच रूपसों दीखेहै ॥ ४७ ॥

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः॥ कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाऽव्यक्तवर्त्मना॥ ४८॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम्॥ ४९॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः॥ ५०॥ बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत्॥ ५१॥

जन्मकों आदि लेके मरणपर्यंत धर्म देहीके हैं, आत्माके नहीं सो दृष्टांत कहैहैं, जैसे चंद्रमाकों मंडल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखो जाय है सो कलानको है जितनो सूर्य मंडलतें नित्त न्यारो परेहै, तितनो दीखेहै ज्यों ज्यों मंडलके नीचें दबेहै, त्यों त्यों घटेहै, तैसो आत्मा एकरूप है, अप्रगट गति कालकरि जन्म मरणादिक भाव देहकों होयहैं आत्माको नहीं यह ज्ञान चंद्रमातें पायोहै, यातें चंद्रमा गुरू है॥ ४८॥ अब वैराग्यमें अग्नितें सीख्यो हैं सो कहै है जैसो अग्निको स्वरूपसों नाश कभू नहीं होयहै अग्निकी ज्वालाको नाश होयहै परि दीखै नहीं तैसे कालनदीके वेगसों जन्म मरण या देहहीको है, आत्माको नहीं आत्मा तो नित्य॥ ४९॥ अब सूर्यतें जो जो सीख्यो सो कहैहैं, जैसें सूर्य अपनी किरणनसो जल सोखेहैं, फेरी वर्षा समय वही जल छोडेहै, परि वामें आसक्त नहीं है तैसें योगी इंद्रिय अपेक्षित पदार्थनको ग्रहण करै और कोई याचना करै तो तत्काल दे देय ममता न रखै और बुरी भली सब जगे सूर्यकी घाम परैहै पन कछू सूर्य आसक्त नहीं होय और दूषित नहीं होयहै ऐसीही योगी रहै॥ ५०॥ जैसे सूर्य आकाशमें अपने

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन् विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥५३॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ॥ तं तं समनयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

स्वरूपमें रहे है एकही हैं परन्तु जलादिमें प्रतिबिम्ब पडवेसौ अनेक रूपी दीखे है याही प्रकार आत्मा स्वरूपसौ भिन्न नहीं है देहादिकमें प्राप्त है वेसौ स्थूल बुद्धिवारनको अनेक रूपकौ प्रतित होयहै ॥५१॥ कपोतते सीख्यो सो कहेहै कहूं काहूसो अधिक स्नेह न करे काहूमें आसक्त न होइ, जो संग करेहै वो संताप पावेहै दीन मति होइहै जैसें कपोतकों भयो ॥ ५२ ॥ सो कपोतकी कथा कहे है, एक कपोत वनमें वृक्षपे अपनों घर बनाइ कपोतिनी अपनी स्त्रीसों मिलिके कितनेऊ वर्षतक दोनों बसतभये ॥ ५३ ॥ वे दोऊ स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परम स्नेहसौ बधे भये दृष्टि दृष्टिसो बधि हृदय हृदयसो बध्यो अंग अंगसो बधे बुद्धि बुद्धिसे बधी ॥ ५४ ॥ शयन आसन गमन स्थान वार्ता क्रीडा भोजन एक ठौर बैठिके करें, न्यारे न्यारे ह्वैकै न करे, या प्रकार वे वननकी पंगतमें निःशंक भये फिरे ॥५५॥ वह कपोतिनी अपने हावभाव लावण्य मधुर भाषणसौ प्रसन्नकर कपोतसौ दीन ह्वैकै जो जो वस्तु मांगे सो सो वस्तु अति कष्टहू करि

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ॥ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून् पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुम्बिनौ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥

लेआवे, या भांति अजितेंद्रिय वाके आधीन भयो रहै ॥ ५६ ॥ एक समय प्रथमही गर्भवती भई पतिव्रता कपोतिनीने अपने समयके आये पतिके समीपही अपने घरमें अंडा दिये ॥ ५७ ॥ कछु समयपै विन अंडानमें अचिन्तनीय हरिकी शक्तिन करि हाथ पाउ आदि युक्त बच्चा भये और तिनके कोमल अंगमें रोम भये ॥ ५८ ॥ पीछें ये दोऊ कपोत कपोतनी प्रसन्न भये, अपनें बच्चानको पालत भये,पुत्रनमें स्नेह बहुत भयो, विनके मधुर वचन सुनते अपनें बच्चानतें संतोष बहुत पावत भये ॥ ५९ ॥ विनके पंखनसों जब आपको स्पर्श होइ, तब बहुत सुख पावें,प्रसन्न होजाय अपनें पुत्रनकें मुखकी सुंदर चेष्टा विनके वचन अपनें निकट आइवो सो परम सुख मानि लेतभये ॥ ६० ॥ वा स्नेहसो बद्ध हृदय होइ हरिकी माया करि परस्पर मोहित भये अतिदीनबुद्धि ये स्त्रीपुरुष बच्चानकों पालत भये॥ ६१॥ एक दिन ये दोऊ

दृष्ट्वा तांल्लुब्धकः कश्चिद् यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे
जालमावृत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥ कपोत-
श्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमा-
दाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥६४॥ कपोती स्वात्मजान्
वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत् क्रो-
शन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्ने-
हगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत
शिचा बद्धान् पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चा-
त्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान् ॥ भार्यां
चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो
मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्य कृ-
तार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

कुटुंबी कपोत वनमें चारों ओर बालकनकें अन्नके अर्थ बडी वेर अभिलाषासों फिरतभये ॥६२॥ अपनी इच्छातें वनमें फिरत कोऊ एक क्रूर वधिक अपनें घोसुवाके निकट चुगत बालकनकों देखि जाल रोपिकें पकरत भयो ॥ ६३ ॥ पीछे ये दोऊ कपोत कपोतनी सदा हर्षसंयुक्त प्रजाको चुगो चारो लेवेको गये ले अपनें घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब वह कपोतिनी अपने बालकनकों जालमें अति दुःखित पुकारत देखि आपहू पुकारती दौरी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहकरि वंधी दुःखित चित्त जालमें वंधे बालकनकों देखि तहां हरिकी माया करि ज्ञान रहित भई जालमें आपुहू वधतिभई ॥ ६६ ॥ पीछें वह कपोतहू आपते अधिक प्यारे बच्चानको देखि और अपनें समान स्त्रीहूको वधी देखि अति दुःखी भयो विलाप करत भयो ॥६७॥ अहो देखो में अल्प पुण्यहूं मूर्ख हूं इन भोगनमें

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृताञ्छिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥

अबहू तृप्त नहीं भयो, देखो मैंनें कछू पुण्य नहीं कियो, धर्म अर्थ कामको साधक मेरो घर नष्ट भयो है ॥ ६८ ॥ यह स्त्री मोकों योग्य अनुकूल और पतिव्रता ही, सो आज मोकों सूनें घरमें छोडिकें साधु पुत्रन समेत स्वर्गको जायहै ॥ ६९ ॥ ऐसी स्त्री पुत्र सब मरे सो मैं दीन भयो, विधुर भयो, दुःखी भयो, या सूनें घरमें कौंन अर्थ जीवेकी इच्छा करो मेरो जीवन दुःखरूप है ॥ ७० ॥ वह कपोत या भांति विलाप करत विन बालकनकों और अपनी प्रियाकों मृत्युकरि ग्रसे जालमें चेष्टा करत देखि दीन भयो आपुहू वा पुरुषके देखतही जालमें परतभयो ॥ ७१ ॥ वा गृहस्थ कपोतको और कपोतनीकों वाके बालकनकों पाइ कार्य्यसिद्ध भयो, तब वह क्रूर वधिक अपनें घरकोजातभयो ॥ ७२ ॥ अवधूत यदुसों कहैं हैं ऐसी भांति कुटुंबी कपोत अशांतचित्त भयो याही प्रकार यह पुरुष सुखदुःखहीमें रति मान दीन होइ कुटुंबको भरण पोषण करते कुटुंबसहित दुःखही पावे हैं सुख कबहूं न पावेहै कपोतकी भांति बंधे हैं ॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः॥ १॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥

जो मुक्तिको खुल्यो द्वाररूप या मनुष्य लोकको पाइकरी कपोतकी-भांति गृहनमें आसक्त होइ, सो उत्तम गति पाइकर अधोगतिमें परे है, गृहमें आसक्ति पक्षीनहूको अनर्थ करै हैं तौ मनुष्यकों तौ अतिही निंदित है, यह विद्या कपोततें सीखी यातें कपोत गुरु भयो ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे अवधूतोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठये अध्यायके विषें कि अजगर आदि नौ गुरुनतें अवधूतकी वाणिसो विवेकके अर्थ उद्धवसों हरि कहे हैं ॥ प्रारब्ध कर्मनको भोग अवश्य कियेही छूटे हैं, तातें कर्मनके उद्यमकरि वृथा आयु न खोवे, तहां अजगरकी सीख अवधूत कहें हैं हे राजन् ! जिनकों देहको अभिमान है, विनकों इंद्रियनको सुख नरकहूमें होयहै, जैसे दुःख विना इच्छाकेहू होयहै, तैसें सुखहू होतहै, तातें बुद्धिवंत सुख न चाहें ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायासतें प्राप्त होई अथवा विरस होइ थोरो होइ बहुत होइ ऐसे ग्रासकों लेइ सबतें उदासीन रहै शरीर निर्वाह मात्रही

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥४॥ मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥५॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ७ ॥

ग्रहण करे यह अजगरकी रहनि है ॥ २ ॥ जा दिन कछू न पावे ता दिन निराहारही सोयरहे, अजगरकी भांति ईश्वर देइगो उद्यम न करे ऐसें धीर्य्यसों रहे ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्री, समर्थ होइ मन पुष्ट होइ शरीर पुष्ट होइ तथापि कर्म कछु न करे, जागतही परचो रहै, काहू वस्तुकी अपेक्षा होइ तऊ यत्न न करे ऐसी भांति निरपेक्ष होइ रहै ॥ ४ ॥ अब समुद्रते सीख्यो सो कहे हैं जैसें समुद्रको निश्चल जल है, तैसें अंतःकरणमें प्रसन्न रहै; समुद्र महागंभीर है ताको पार और अंत नहीं जाकों कोऊ लांघि न सकैं, जाकों कोऊ गोहि न सके, क्षोभ करि न सके, ए सब गुण समुद्रतें सीखे ऐसेही महात्मानको उचित है ॥ ५ ॥ जैसें समुद्र चौमासेमें नदीनके जलसो चढे नहीं आतपमें नहीं सूखे न घटे तैसें योगीराज जो कछू पावे ताहीमें संतोष करे, न पावे तो खेद न करे, एक नारायण विषें तत्पर होई विषयनतें दूरि रहे ॥६॥ इंद्रियनके पांच विषय है, रूप गंध स्पर्श शब्द रस इनमें आसक्त भयेते यह जीव नष्ट होयहै, जैसे पतंग भ्रमर गज हरिण मीन ये नाशको

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं मधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥

पावे है तातें ये पांच विषयन विषें आसक्त न होइ, यह बात इन पांचोनके पासतें सीखी है. तहां पहिले पतंगते जो सीखी है सो कहैं हैं जैसें पतंग अग्निको रूप तेज देखि भ्रमतें वामें जाइ परै है ॥ ७॥ तैसें यह स्त्री देवमाया है, ताकों देखि वाके सुवर्णके आभरण वस्त्र मायाविलास देखि वाके हावभाव करि मोहित अजितेंद्रिय लोभी भोगकी बुद्धि करि अंध कूपमें परैहै, याकी दृष्टि नष्ट भई है अंध कूपकों जानें नहीं हैं, रूप देखि भ्रमकरि नष्ट होयहैं, यह पतंगतें सीखी जैसे पतंग दीपककी लोइ देखकें नौछावर हैकै वाईमें ज़रके मरजायहै पन दीपकके भाये नहीं होय है ऐसैंही ये पुरुष स्त्रीरूप अग्निमें पतंगकी तरह मरैहै पन इनके भाये नहीं होयहै ॥ ८ ॥ अब भ्रमरते जो सीखी सों कहैं है जो मुनि होइ सो थोरो ग्रासमात्र मांगिलेइ. जितने करि देह रहै एकही घरमें सब न मांगे, जातें गृहस्थको पीडा होइ, जैसें भ्रमर सुगंधकें लोभ करि एक कमलहीमें बसे तो वामें बधैहै तैसें यह एक ठौर मांगवेसों बँधे है ॥९ ॥ जो चतुर मनुष्य होइ तो सब शास्त्रनतें सार वस्तु लेइ, शास्त्र छोटे होइ अथवा बडे

१ कुरंगमातंगपतंगभृंगमीना हताः पंचभिरेव पंच ॥ एकः प्रमाथी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥ १ ॥ मतलब यह है कि जब ये एक एक विषय एक एक जीवके प्राणघातक हैं तब फिर जो पांच इंद्रियनसो पांचौनके सेवन करै है कहो वो कैसौ न मारो जाय सो कहै है ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणि-
पात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायन्तनं
श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव संगृ-
ह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न
स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या
अङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हि-
चिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यै-
र्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःख-
संचितम् ॥ भुक्तं तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥

होइ सार सब लेइ, और जैसे वृक्षके कीच काटे आदिको छोड गंध-मात्र ग्रहण करैहै ऐसेही शास्त्रनके अनेक दोषनको छोडकें सारांशमात्र अपनो प्रयोजन ग्रहण करै जैसें भ्रमर पुष्पनतें सार मकरंदको लेई है, यह बात भ्रमरते सीखी हैं ॥ १० ॥ भ्रमरको दूसरो नाम मधुकर है, सो मधुकर मधुमाखीनहूमें रहैहैं. ता मधुमाखीते जो सीखी सो कहैं है मुनि भिक्षाको लै आवे, सांझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न राखे, पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करे, मधुमाखीकीसी भांति संग्रह न करे ॥ ११ ॥ जो संग्रह करे तौ नष्ट होइ, जैसे मधुमाखी मधु-सहित नष्ट होयहै ॥ १२ ॥ अब हाथीकी सीख कहै हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पावसोहू न छीवै स्पर्श करे तो बधे जैसे हाथी हथि-नीके अंगसंगते बधैहै यह मैं हाथीहूते सीखी ॥ १३ ॥ जो बुद्धिवान् होइ तो कबहू स्त्रीके निकट न जाइ. जाइ तो अवलंबन करिकै पिटे, स्त्री आत्माको मृत्यु है, जैसे और बलवंत हाथिनसौं हाथी मारोजाय है ॥ १४ ॥ जो कोऊ मधुमाखीनके पासते छुडाइकै मधु हरिकें लै आवे सो मधुहा कहावे, जो मनुष्य लोभी है अनेक दुःखोंसे धनसं-

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहे-
वाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं
न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्
बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगी-
तानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको
वश्यमृष्यशृङ्गो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमा-
थिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धि-
र्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

चय करैं हैं न दान करै है न आप भोग करै है तो वा धनको भोग औरही करैगो, जैसें माखी ठौर ठौरतें मधु ले संग्रह करै है, भोग और कोऊ करैहै, ये धनके उपाइ जानै ॥ १५ ॥ अतिदुःख करि संचयधन करि ग्रहण करै मनोरथको चाहिवेवारे गृहस्थनके पहिले संन्यासी भोजन करे हैं; जैसे मधुहा माखीनतें प्रथम भोजन करे है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं, तिनको दिये विना जो भोजन करे तो चांद्रायण व्रत करि शुद्ध होइ ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरै गामके गीत प्राकृत कबहू न सुनें सुनें तो बंध-नमें परे जैसें मृग वधिकके गीत सुनि मरें है यह विद्या हरिणतें सीखी ॥ १७ ॥ गामके गीत नृत्य वादित्र सुनिके विनके वश होइकें बंधन पावें है जैसे शृंगीऋषि मृगीको पुत्र स्त्रीनके वश होई इनको खिलोना भयो ॥ १८ ॥ मीनतें जो सीखी सो कहैहै यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जीभके वश होइके मृत्युको पावै है जैसे वंशीके लोहमें मांस लगावे है, ताके स्वादतें मछरी वंशीको पकरे है तब फेरि मरे हैं ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्ज- यित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जिते- न्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ॥ न जयेद्र- सनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिङ्गला नाम वेश्यासीद् विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किं- चिन्निबोध नृपनन्दन ॥२२॥ सा स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥

पंडित आहारकों छोडिकै शीघ्र इंद्रिनकों जीतें हैं एक रसनेंद्रि- यनकों नहीं जीतिसकै है कारण कि आहार त्यागवेसौं जिह्वाको लोभ बढै हैं ॥ २० ॥ जो पुरुषनें और इंद्रिय जीतीहै पर वो तोलौं जितें- द्रिय नहीं होइ है जोलों जिह्वा न जीते, जो जीभ जीते तो जानो सब जीते, तहां यह अभिप्राय जो आहार छोडिये तो केवल और इंद्रियको जय होय रसनेंद्रिय बढै और भोजन करे तो रसकी आसक्तिकरि सब इंद्रियनको लोभ होइ यातें रसकी आसक्ति छोडिकै औषधिकी भांति अन्न लेइ ॥ २१ ॥ अब पिंगलाकों उपाख्यान कहैहै अवधू- तजी राजा यदुसों कहैहै पिंगलानाम वेश्या पहलें विदेह नगरमें ही ताते मैंने कछु सीख्योहै ॥ २२ ॥ हे राजन् यदो ! सो तुम सुनो एक दिन वह कामचारिणी वेश्या द्वारेपै नगाडो धरके यह संकेत करचौ कि जो पुरुष या नगाडेपर जितने डंका मारे वह रात्रिमें मेरे पास आयके उतने हजार रुपा देयगो ऐसी समस्या बनाई इतनेहीमें हमने जाय वा नगाडे पर दसवीस डंका लगायदीने और सामने जो दुकान खाली परी ही तापै जाय बैठै तब तो वह कांतको रतिस्था- नमें लेजायवेकी इच्छासो अतिउत्तम रूपको धरे सायंकाल द्वार-

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान्छु-
ल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥२४॥ आ-
गतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वि-
त्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुरा-
शया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बिनी॥ निर्गच्छन्ती प्रवि-
शती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया
शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चि-
न्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया
गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद आशापाशानां पुरुष-
स्य यथा ह्यसिः ॥ न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं
जिहासति ॥ २८ ॥

परे स्थितभई ॥ २३ ॥ वह वेश्या मार्गमें आवते धनवंत मोलके दाता पुरुषनकों भोगयोग मानती भई कारणकी वाके अर्थकीही कामना ही ॥ २४ ॥ विनको आयो और गये देखिकरि और कोऊ धनवंत मोको वडो दाता प्राप्ति होइगो या आशा करि सो संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपै बैठी रही ॥ २५ ॥ ऐसें दुराशाकरि जागती द्वारपै आवे फिरी भीतर जाइ ऐसी भांति अर्धरात्रि गई ॥ २६ ॥ वाको धनकी आशाकरि चित्त दीन भयो मुख सूखनलग्यो चिंतासौ परमवैराग्य उपज्यो वानें वैराग्यकरिके जो कह्यो सौ सुनो ॥ २७ ॥ वाकों धनकी आशाकरि चित्त दीन भयो मुख सूखन-लग्यो निर्वेद भये चित्तसौ कामकंदलाने जो गायो सो मैं कहूंहूं तुम सुनो वह मनमें विचार करे है कि वैराग्य पुरुषके दुराशा पाशा काटनको खड्ग हैं हे राजन् ! जाको वैराग्य नहीं ताके देहके बंधन

पिङ्गलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥२९॥ सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३० ॥ अहो मयात्मा परितापितो वृथा साङ्केत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्याऽर्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३२ ॥

नहीं छुटैहैं ॥ २८ ॥ अहो देखो मेरे मोहको विस्तार मैंने मन अपनो न जीत्यो मैं विवेकरहित हूं जो ऐसे दुष्टनको प्रियकरि अपनो अभिलाष पूर्ण कियो चाहूंहूं यासों मैं मूर्खा हूं ॥ २९ ॥ अपनो अतिप्रिय निकटही सदा रहैं हैं अति सुखकारी रतिको दाता धनदाता नित्य प्रियको छोडि दुःखित भई चिंता शोक मोहके देनवारे तुच्छ मनुष्यको मैं सेवन करती भई न तो विनसों मेरो काम पूर्ण होय है न सुख होय है मैं मूढ हूं ॥ ३० ॥ अहो मैंने यह आत्मा वृथा सतायों जातें अतिनिंदा संयुक्त शोकसो ग्रसे धन और रतिकी इच्छाकरि मेरी देह विकी और अतिनिंदित यह संकेत वृत्ति करी धनमें तृष्णावारे कामी पुरुषनसों मैंने रतिकी चाहना करके अपनो शरीर बेचौ मोकू धिक्र है ॥ ३१ ॥ हाथ पांइके हाड थूनी पांसुरीनके हाड बांस और पीठिको हाड जहां वरेंडा है, ऐसो शरीररूप घर त्वचा रोम नखसों ढक्योहै जाके नौ द्वार स्रवै हैं विष्ठामू-

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यामि-
च्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३३ ॥
सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं वि-
क्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३४॥ कियत्प्रि-
यं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यन्तवन्तो
भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥ नूनं मे भगवा-
न्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशा-
या यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६॥

त्रसों पूर्ण नरक रूप कांतकों मेरे विना कौन स्त्री सेवैगी ॥ ३२ ॥ या विदेहराजाके नगरमें एक मैंही अति मूढ हों जो में अशाध्वी साक्षात् अच्युत परमात्माकों छोडी तुच्छ कामभोगको इच्छा करती भई॥ ३३ ॥ यह ईश्वर सब देहीनको आत्मा है, सुहृद् है, परम प्रियनाथ है आपेको देकै वासो मोल लेके वाहीसों लक्ष्मीकी समान रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता ये सब उत्पत्ति मरण संयुक्त हैं, कालकरि ग्रस हैं, वे स्त्रीकी कामना कहा करेंगे ॥ ३५ ॥ अब अपनें भाग्यकी सराहना करै हैं, निश्चय करिकै मोपै भगवान् विष्णु काहू कर्म करि प्रसन्न भये हैं, जातें दुष्ट आशा संयुक्त मोकों सुखदायक ऐसो वैराग्य उपज्यो ॥ ३६ ॥

---

१ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितं कुचौ मांसग्रंथी कनककलशावित्युपमितौ ॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं अहो निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥ खकारको घर मुख मासकी गाठ दोऊ स्तन और वहते मूत्र युत जाकी योनि ऐसे गये वीते या स्त्रीके शरीरकों कविन्ने अनेक चंद्रमुखआदि उपमानसों श्रेष्ठ कीनों है ॥

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानु-
बन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३७ ॥ तेनोपकृत-
मादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः॥त्यक्त्वा दुराशाः शरणं
व्रजामि तमधीश्वरम्॥ ३८ ॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्य-
थालाभेन जीवती॥विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन
वै ॥३९॥संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं
कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥४० ॥ आ-
त्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्र-
मत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥

कदाचित् कहो धनकी प्राप्ति न भई ताको खेद भयो विष्णु कहा प्रसन्न भये,(तहां कहे है) मंद भागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते कारण कि याही प्रकार औरहू पहले दिन है गये है जब धनकी प्राप्ति न भईही न कोई पुरुष आयो हो आज मोको क्लेशसौ वह वैराग्य भयो है जा वैराग्यसों यह पुरुष गृहादिक बंधन छोडिकैं शांति पावे ॥ ३७ ॥ ईश्वरनें मेरो यह बडो उपकार कियो है जा उपकारकों मैं माथें चढाइ लियो,जो मैं ग्राम्य नीचनसों मिलीही ताके संगकी दुराशा छोडि एक जगदीशकी शरण आवत भई ॥ ३८ ॥ अब मैं संतुष्ट होय परमेश्वरमैं श्रद्धा करती यथा लाभसों जीविका करती निश्चय करि आत्माहीको रमण करि आनंदसों विहार करोंगी ॥ ३९ ॥ जो संसारकूपमें परचो है, विषयनकरि अंधदृष्टि है, काल-स्वरूपकरि ग्रस्यों हैं, ऐसें आत्माको रक्षा करिवेकों या आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ॥ ४० ॥ जब सबतें यह आत्मा विरक्त भयो, तब अपनी आपुही रक्षा करवेमें सावधान भयो, या जगत्कों जो कि कालसर्पसौ ग्रसित है अप्रमत्त हैके देकै देखे॥४१॥

ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ॥ जित्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४२ ॥ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अवधूत बोले या भांति निश्चय मतिसौ धन और विषयभोगकी आशा छोडि शांतिको पाइ वह वेश्या शय्यापर सोवंती भई ॥४२॥ आशा परम दुःखरूप है, आशा छोडि बैठिनों परम सुख है, जैसे पिंगला कांतकी आशा छोडि सुखसों सोवतभई ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे श्रीभगवदुद्धवसंवादे पिङ्गलोपगीतेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

१ साधुनको संग्रह करनो उचित नहीं है, यासों दुःख होय हैं, एक बाबाजीने बडे कष्टसो पचीस असरफी संग्रह करीं, जबतक निकारि है चुटियामें धराकरतेथे, एक दिन काऊने देखे लीनी सो बाबाजीसे आनके बोल्यो महाराज! आपको आज मेरे यहां निमंत्रण हैं, बाबाजी बोले अच्छा, तब वोह घर लिवायगयो और इतनो हलुआ पूरी खवायो कि बाबाजीसे उठचो न गयो तब वाने खाट बिछायदीनी और अपनी स्त्रीते कहा कि इनके चरण खूब दाबियो और मैं जाउंहूं यह तौ सेवा करनेलगी, और वोह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमें आय आलेमें ढुंढनेलगो, स्त्रीने कही क्या ढुंढोहो तब वाने कही ह्यां पचास असरफी धरी सो कहां गई, अब बाबाजी सकुचाये वोह स्त्रीको मारनेलगो कि तैंने बाबाजीको देदी होगी बाबाजी बोले हमारे कपडे देख लेउ, दो चार आदमी इकठे भये, तब यह बाबाजीका चुटिया देखो, ताामें असरफी निकली, बाबाजी बडे लज्जित भये, धनको धन गवायो चोरके चोर बने, जब बाबाजी चले तौ याने हाथ जोर कही महाराज! फिरभी आइयो, तौ बाबाजी बोले जब पचीस और कर लेऊंगो तब आऊंगा ॥

अथ नवमोऽध्यायः।

ब्राह्मण उवाच॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्॥ अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः॥ १॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत॥ २॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम्॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत्॥ ३॥ द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ॥यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः॥ ४॥

नौके अध्यायमें कुरर पक्षीतें ले और देहतें जो बुद्धि सीखी ताको सुन यदु कृतार्थ भये यह श्रीकृष्ण उद्धवतें वर्णन करत भये॥ अब कुरर पक्षीतें जो सीख्यौ हैं सो कहैं है,मनुष्यनको जो जो वस्तु प्रिय हैं, सो सो मोकूं दुःखदायी है, यह जानि जो संग्रह छोडे सो अनंत सुख पावे॥ १॥ तहां एक दृष्टांत बतावे हैं, एक कुरर पक्षीने मांस पायो, तब वाते बलवंत मांसरहित और पक्षी आये, ते वाको मारन लगे जब याने वह मांस डारिदियो, तब वे वाको छोडि मांसको लैगये यह छोडिके सुखी भयो॥ २॥ अब बालककी सीख है सो कहैं है राजन्! न तो मोकों मान अपमानको सुख दुःख है, न घरकी चिंता है; न पुत्रनकी चिंता है एक आत्माहीसों क्रीडा करत यहां फिरो हों, जैसें बालक चिन्तातें छुटो परम आनंदमें मग्न होइ हैं॥३॥ हे राजन्! द्वै मनुष्यही चिंतारहित हैं परमानंदमें मग्न होय हैं एक तो उद्यमतें रहित अज्ञबालक दूसरौ गुणरहित ईश्वरकों प्राप्त होवेवारो

---

१ यह ज्ञान दत्तात्रेयके दर्शनसे पिंगलाको प्राप्त भयो॥

क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शङ्खाः स्वनं महत् ॥६॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभंजैकैकशः शङ्खान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद् घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शङ्खयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिन्दम ॥ लोकाननुचरन्नेताल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ कुमारीतें जो सीख सीखी सो कहैं हैं, कहूं एक कन्या ही वाके भाई बंधु पिता सब कहूं गये हे, कन्याको विदा करामन वाके घर पाहुनें आये तब विनको आतिथ्यभाव वह आपुही करती भई ॥ ५ ॥ हे राजन्! कन्या विनके भोजन कराइवेकों एकांतमें बैठिकैं धान कूटनलगी, तब वाकी चुडिनको बडो शब्द हौन लग्यो ॥ ६ ॥ वह कन्या आपु धान कूटिवो निंदित दरिद्रको कर्म मानिकैं क्रमसों एक एक चूरी फोरती भई हाथनमें द्वै द्वै राखी ॥ ७ ॥ धान कूटत द्वैद्वैहू चूरीनको शब्द होत भयो, तिनहूमेंतें एक एक दूरि करत भई, तब एकते शब्द नहीं होतौ भयो ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक! लोकनकों तत्त्व जानिवेकी इच्छाकरि सर्वत्र फिरते मैंने एक दिन कुमारी या भांति धान कूटति देखी तब यह उपदेश वातें सीखत भयो ॥ ९ ॥ बहुतनकों जहां वास होइ तहां अवश्य कलह होइ, जो द्वै होय तो

मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः॥ ११॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरन्तरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥

आपुसमें बात तोहू करे, तातें अकेलोइ विचरे, जैसे कुमारीको कंकण ॥ १० ॥ अब बाण बनामनवारेते जो सीख्यो सो कहैं हैं मनको ईश्वर विषैं स्थिर कर प्राणनकों वशकरै आसन जीते वैराग्यको अभ्यासकारि मन स्थिर करै सावधान रहे ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य्यरहित यह मन परमानंदरूप भगवान् विषैं जब स्थान पावे, तब शनैः शनैः कर्मवासना छोडे, जब याकों सतोगुण बढे तब रजोगुण तमोगुणको दूरि करिकैं ब्रह्ममें लीनहोइ, तब ब्रह्म विना और कुछ दृष्टिमें नहीं आवे है ॥ १२ ॥ या भांति आत्मासों जब चित्त मिलिजाई तब बाहर भीतरको भेद नहीं रहै है सब एकरूप करि देखेहे जैसे बाण बनायबेवारेको चित्त बाण बनायवेमें ऐसो लगो हो कि निकट ह्वेकें सेना समेत राजा चल्यो गयो वाने न जान्यो ऐसेही साधुनको चाहिये कि ईश्वरमें ऐसो मन लगावैं जो और कछु सुधि न रहैं ॥ १३ ॥ सर्पतें सीखीसो कहैं हैं सर्पकी नाई सब लोकनतें डरपत अकेलोई रहै, एकही ठौर घर करि न रहै, सदा सावधान रहै, एकांतहीमें वसे, दूसरेको सहाय न चाहैं, अपनी गति दूसरेसों छिपाये रखैं और

गृहारम्भो हि दुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥१५॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः॥१७॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥१८॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन् सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥१९॥

विष निर्विष जान्नेमें नहीं आवै है ऐसे रहे है थोडौ बोलै है ऐसैही मुनिनको रहनौ चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है याके लिये घर न कीजे घर दुःखको रूप है और फल कछू नहीं हैं, जैसे सांप पराये घरमें प्रविष्ट व्हैकैं सुखसों बैठे वैसे आपु घर न करे ॥ १५ ॥ एक नारायणदेव ईश्वर आपु या विश्वको अपनी माया करि सृजे है फेरि प्रलयमें कालशक्ति करि संहार करिकैं आपुहीमें राखे हैं ॥ १६ ॥ तब एक अद्वितीय, आत्मा आधार समस्तनको आश्रय होइ आपुही एक रहे है, वे अपनें या समतारूप कालसों सतोगुण आदिशक्ति मायामें लीन करे है वही आदिपुरुष माया और पुरुषको ईश्वर हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक और युक्त पुरुषनकों पाइवेकों योग्य है मोक्षके रूप केवल अनुभव आनंदके पात्र निरुपाधि अनन्त है ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि करेहै तब केवल अपने प्रभावकारि त्रिगुण अपनी मायाकों क्षोभ उपजाइ वा माया करि पहिले सूत्ररूप महत्तत्त्व

तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन् प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः॥ याति तत्साम्यतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

उपजावैहै ॥ १९ ॥ वाते त्रिगुण रूप विश्व अहंकारद्वारा होयहैं, जा महत्तत्त्वमें यह विश्व ग्रंथ्योंहै, जा प्राणरूप सूत्र करि पुरुष संसारकूं पामें हैं ॥ २० ॥ मकरीकी शिक्षाकों दृष्टान्त कहे हैं जैसे मकरी अपने हृदयतें उगलिकै तागा मुखतें काढि फैलायकरि तासों क्रीडाकर फिर निगल जायहै ऐसैही ईश्वर स्वयं या जगत्को बनायकें फिर संहार करैहै ॥ २१ ॥ यह जीव स्नेहतें द्वेषते अथवा भयतें बुद्धि करि जहां जहां एकाग्र मन धरे है वा वा रूपको पावे हैं तातें जो ईश्वरको ध्यान करें तो ईश्वरको रूप होइ यामें कौन अचरज है ॥ २२ ॥ हे राजन्! जैसें भृंगीमें भीतिमें राख्यो कीट भृंगीको ध्यान करते वाही देहकरि वा भृंगीके रूपकों पावैहै ॥ २३ ॥ या प्रकार इतनें गुरुनतें यह मति सीखी, हे राजन्! एक बुद्धि अपनी देहतें सीखीहै सो मैं कहूं ताको सुनो॥ २४ ॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं
सततार्त्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा त-
थापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥ २५ ॥
जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रि-
यचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः
स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥
जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगु-
दरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च क-
र्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

देह मेरो गुरु है या देहतें मोकों वैराग्य विवेक उपज्यो यह देह पीडा-सहित सदा जन्म मरणकों धरें है, या देहसों यथार्थ करि तत्वनको विचार करवेसों मोकों वैराग्य भयोंहै तौहू में यापै प्रीति नहीं करौंहो क्योंकि यह कुत्ता और स्यारनको भक्ष्य है यह निश्चय कर सर्वसंगरहित हो विचरौंहूं ॥ २५ ॥ जा देहकी प्रसन्न करवेकी इच्छाकरि स्त्री पुत्र धन पशु दास गृहबंधुके समूहनकों पोखै हैं, बहुत दुःखसों धन जोरें हैं, इतने परहू अन्तमें यह देह आपही नाश है जायहै देहके गयेहूं दुःख नहीं जाइ हैं, दूसरे देहको कर्म बीज उपजाये जाइहै ता कर्मते फिरि दुःख रूप देह या प्रकार उत्पन्न है जायहै जा प्रकार रूख अपनो बीज छोडेहै तातें फेरि रूख होयहै ॥ २६ ॥ और या देहीकों एक ओरतें जिह्वा रसके लियें खेंचे है,कबहूं तृषा जलके लिये खेंचेहै, शिश्न स्त्रीसंगके लिये खेंचैहैं, त्वगिंद्रिय एक ओरतें स्पर्शके लियें खेंचेहै, श्रवण शब्दके लियें खेंचैहैं, और घ्राण गंधके लियें खेंचैहै, चंचल दृष्टि रूपके लियें खेंचेहै, कहूं कहूं कर्म शक्ति अपनें विषयक लियें खेंचेहै, जैसें बहुत सौति गृहस्थपाकों लूटें हैं तैसें ये

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहङ्कृति ॥३०॥ न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥

सब इंद्रिय देहकों लूटें हैं ॥ २७ ॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासों वृक्ष सर्प पशु पक्षी डांस माछर नानाविध शरीरनको उपजाइ करि ब्रह्मा संतुष्ट हृदय न भयो परन्तु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि राखनवाले मनुष्यनकी देह रचकै आनन्दको प्राप्त भये ॥ २८ ॥ ताते यह अति दुर्लभ मनुष्य देह अनेक जन्मन पीछें पायों है पुरुषार्थको दाता है, पर अनित्य है,यह जानिकैं शीघ्र मोक्षके निमित्त जौंलों मृत्यु न होइ शीघ्र यत्न करै क्योंकि विषय तौ याकूं सब योनिनमें होंइगे ॥ २९ ॥ या भांति मोको वैराग्य उपज्यों ज्ञानको प्रकाश भयो, तब आत्मनिष्ठ भयो, यासों संग और अहंकार छोडिकैं मैं पृथिवीमें फिरूंहूं ॥ ३० ॥ जो कहो कि तुमने बहुत गुरु काहेको कीने गुरु तो एकही करनो चाहिये तहां कहैं हैं एक गुरुते अति निश्चल ज्ञान विस्तार नहीं पावे है ताते अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भांति कहैं हैं, कोई कहैं है वह प्रपंचरहित है कोई कहै है सप्रपंच है जाते भ्रम

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गम्भीरधीः ॥ वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥३२॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः सपूर्वजः ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

होयहै, सो भ्रम इन गुरुनते निवृत्त होयहै परमगुरु मुख्य ज्ञानको दाता एकही है परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसौं उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेवेसौं वह ज्ञान दृढ है जायहै ॥ ३१ ॥ इतनो वृत्तांत कहि यदुकी आज्ञा ले गंभीर बुद्धि राजासो प्रणामको प्राप्त हैके वाकी स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छा करि जैसे आये है तैसेई जात भये ॥३२॥ ये अवधूत दत्तात्रेय है, तिनके वचन सुनि हमारे बडेनहूंके बडे राजा यदु सब संग छोडि समचित्त होत भये, यह सबश्रीभगवान् उद्धवजीसो कहत भये, कपोत मत्स्य मृग कुमारी हाथी सर्प पतंग कुरर ये आठ तो त्यागके अर्थ गुरु कीनें, भ्रमर मधुहा पिंगला ये तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लियें गुरु किये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामेकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु महाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम्॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥३॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥

चोवीश गुरुनतें स्थिर ज्ञानकी भूमिका पाये उद्धवको आत्मज्ञान पाइवेकें अर्थ इनते अगिले अध्यायनमें साधन कहेंगे अब दशयें अध्यायनमें आत्माको संसार देहसंबंधते हैं आपुतें नहीं; औरनके मतको खंडन करिकें भगवान् यह वर्णन करेंगे ॥ मेरे कहे स्वधर्मनमें सावधान ह्वेकें मेरो आश्रय करे वर्ण आश्रम कुलको आचरण निष्काम ह्वेके करे ॥ १ ॥ जब अन्तःकरण शुद्ध है जाय तब पुरुषको उचित है कि विषयनमें लगे भये प्राणी जो विषयनको निश्चल मानके उद्योग करे हैं तिनके कार्यनके फल विपरीत होतेहैं तिनको विचारतौ रहै यासौ निष्कामता प्राप्त होयहै ॥ २ ॥ जे विषय इंद्रियनसौ जाने जाय है ये सदा नहीं रहै है यासो वे अनेक प्रकारके प्रतीत होय हैं और जो अनेक प्रकारके हैं वे अध्रुव है जा प्रकार मनसौ उत्पन्न भए स्वप्न और मनोरथ अनेक हवेसो चले है ऐसे अनुमान करवेसो निष्कामता होय है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करे सकामको त्याग करे, मेरे विषे तत्पर होइ, आत्माके विचारमें रहै,कर्मकी विधिमें आदर न

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मद-
भिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमा-
न्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थ-
जिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षे-
त्रस्वजनद्राविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वे-
ष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादा-
त्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः
प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृता-
न्गुणान् ॥ अन्तः प्रविष्ट आधत्ते एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

करे ॥ ४ ॥ जो मो विषें तत्पर ह्वैकें आदरसों संयमनको सेवें जब सामर्थ होइ तौ शौचादिक नेमनको सेवे, याहूतें विशेष धर्म कहे हैं सहनशील होइ और मेरे स्वरूपको जानत होइ, शांत होइ, सो मेरोहिरूप है ऐसें गुरुकी सेवा करे ॥ ५ ॥ ऐसी भांति गुरुकी न सेवा करे, सो कहे हैं अभिमान न राखे, आलस्य न करे असहनता न करे, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करे गुरुनके विषे सुहृदता राखे, कर्ममें व्यग्रचित्त न करे, परमार्थ जानिवेकी इच्छा करे काहूकी निंदा न करे, व्यर्थ बातें न करे ॥ ६ ॥ स्त्री संपत्ति घर खेत स्वजन धन सबतें उदासीन रहे, सबनमें एकही आत्मा है, याते अपनी भांति सबनमें सुखादिक समान देखे ॥ ७ ॥ यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहतें भिन्न हैं, सबको द्रष्टा है व्यापक है स्वयं ज्ञानवान् हैं, आकाशवत् हैं जैसें अग्नि दाह्य काष्ठके मध्यही रहेहै, परन्तु काष्ठतें भिन्न हैं प्रकाशक हैं और काष्ठको दाहकर्त्ता है ऐसेही आत्माको जाने ॥ ८ ॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि काष्ठ संग करि उत्पत्ति नाश अलपता महत्व

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसार-
स्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ त-
स्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य
निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽ-
रणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रव-
चनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी सातिवि-
शुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च सं-
दह्य यदात्ममेतत् स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः १३ ॥

नानात्व गुणको धरे है ऐसें यह आत्माहूं या देहके संगकरि देहके गुणनको धरे हैं, परंतु देहते आत्मा भिन्न हैं नित्य है ॥९॥ और कहे हैं जो आत्मा देहते भिन्न है तो देहके गुण क्यों धरे हैं तहां कहे हैं ईश्वरके आधीन मायाके गुणसो पुरुषको यह सूक्ष्मस्थूल शरीर उपजायो भयो है वा देहमें अहं यह अभिमान करवेसों संसारमें गिरैहैं मेरो यह संसारया मायाके काटवेकों आत्मविद्या उपाय हैं ॥ १० ॥ तातें आपुहीमें स्थित् देहके भिन्न आत्माके ज्ञानकी इच्छा करिकै आत्मामें चित्तकों मिलाइ क्रम करिकें स्थूलसूक्ष्म देहादिकनमें आत्मबुद्धिकों छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान कैसै प्राप्त होयहै सो कहे हैं आचार्यरूप नीचेकी अरणी शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठनसौ ब्रह्मविद्यारूप परम सुखदायक अग्नि उत्पन्न होयहै ॥ १२ ॥ जा समय बुद्धिमान गुरुसौ चतुर बुद्धिवारौ शिष्य यह विद्या पावैहै तब यह विद्या गुणनके कार्यरूप संसारको और जिनसौ निर्मित हैकै यह जगत जीवके संसारको निमित्त होयहै विन गुणनकों भस्म कर काष्ठरहित अग्निकी समान आपहू शांत है जायहै याही प्रकार कार्य कारण और विद्याकी एकता हैवेसौ जीव परमानन्द

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नाना-
त्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥
मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥
तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

रूप होयहै॥ १३॥ हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है यामें कर्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसौं प्राप्त होयहै आत्माके सिवाय और सब पदार्थ मायारचित है यासौं विरक्त हैके पुरुष मुक्तिको प्राप्त होयहै परन्तु मीमांसक कहे है कि में हूं ऐसी प्रतीत करवेवारो आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है वही कर्मकर्ता और सुख दुःख भोक्ता है याकौ स्वरूपभूत कोई दूसरौ निर्विकार परमात्मा नहीं है भोगके स्थान रूप लोक भोगकौ काल भोगरूप कर्मनकौ बतायवेवारो वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवारो आत्मा यह अनित्य होय तो वैराग्य होनौ संभव है परन्तु वे सब नित्य हैं यासौ वैराग्य होनौ संभव नहीं भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट है जायहैं अथवा मायामय होय तोहू वैराग्य होनौ संभव है ॥ १४ ॥ माला चंदन आदि भोगनकी स्थिति प्रवाहरूपसौं नित्य है और यथार्थ है यासौं वैराग्य होनौ असंभव है जा दशामें यह संसार देखौ जाय है या दशामें पहलेंहू हो या कारणसौं जगकौ कर्ता कोई ईश्वर नहीं आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है वामें अनेक ज्ञाननकौ विपर्यास होय है एक क्षणमें घटकौ ज्ञान नष्ट हैके पटकौ ज्ञान होय है या प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहे हैं, पूर्व ज्ञानसौ पृथक् है जाय है यासौ आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं सो कहै है ज्ञानके विपर्यास हैवेसौ कहा आत्मा अनित्य है जाय है नहीं आशय यह है कि ज्ञानरूप विकार आत्मामें कछु बाधा नहिं करसकै है मुक्तिमें आत्मा इन्द्रियर-

एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः॥ कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥१६॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥ न देहिनां सुखं किञ्चिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥

हित है यासो वामें ज्ञानको परिणाम नहीं हैवेके कारणसो जडता है जायगी यासो मुक्तिकी प्राप्ति होनो पुरुषार्थ रूप नहीं प्रवृत्ति मार्गही है यासो श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥ १५ ॥ हे उद्धव! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसोही है परंतु आगे अनर्थको हेतु है इन देहीनकूं देहके संयोगतें संवत्सररूप कालते जन्म मरणादिभाव वारंवार होय है ॥ १६ ॥ तुह्मारे मतही विषें कर्मनके कर्तानको और सुख दुःखके भोक्ताहूको पराधीनता देखी जाय है याते ऐसे परवशको भजे यह कोन सिद्धि है और जीव स्वतंत्र होतो तो वाय दुष्ट कर्म वा दुःखकी प्राप्ति संभव नहीं अभिप्राय यह है कि दुःखसुख भोगवेमेंहू स्वतंत्र नहीं है और कर्म करवेमेंहू जब ये स्वतंत्र नहीं है तब कहो याको कोनसो अर्थ प्रयोजन सिद्धि है सकेहै ॥ १७ ॥ या भांति या लोकमें तो सुख कहूं नहीं, और लोकहूमेंहू सुख नहीं सो कहेंहै ईर्ष्या निंदा नाश हानिसो स्वर्गादिकमेंहू कर्मनकी विधिके जाननेवारे विद्वान् अभिमानीको किंचित् सुख प्राप्त नहीं होयहै याही प्रकार मूर्खनको दुःख देखवेमें नहीं आवेहै जे कहे है हम कर्ममें निपुण हैं यासो सुखी हैं यह विनको वृथा अहंकार है यासो अच्छे कर्म करवेसो सुख मिलै है यह नियमहू न रह्यो ॥ १८ ॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च दृष्टवदुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वन्तरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥

और जो कदाचित् सुख दुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशकूं जाने है परंतु या उपायको वेहू नहीं जानते जासो साक्षात् मृत्यु न होय ॥ १९॥ जब मृत्यु अपने निकट है तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त हैवेसो कौन सुखी हैसकैहै, जैसे अपराधीको मारवेको लैजायमें वा पुरुषको अर्थ काम सुख नहीं देयं ॥ २० ॥ या प्रकार जैसे यहां सुख नहीं ऐसैही परलोकमेंहू नहीं है स्वर्गादिकमेंहू पराये सुखकी असहनता ईर्षादिक रहै है यासों यह कि समान वहांहू दोष है जैसे कृषिके सफल हैवेमें अनेक विघ्न होयहै ऐसेही यजनसों मिले स्वर्गमेंहू भूलचूकके अनेक विघ्न होय हैं ॥ २१ ॥

१ आघातमिति वध्यस्येति याको अर्थ यह है कि जो बलि देवेको बकरा या कोट है जाके मूड काटवेके लिये शिरके ऊपर नंगी तरवार लिये कोई खडो है वाकौ हरीदूब या कोई लड्डू भोगको अगारी धरैहै वाकौ कहौ वे कछु आनंदके देनेवारे होय है ऐसेही जाके लिये मृत्यु मारवेको तयार है वाके ताई ये संसारके सब भोग व्यर्थ समझनौ ॥ २ मूर्ख गुणकी कदर नांय जाने है, एक सेठ बीमार भये हकीमने कस्तूरी बताई, सो रूपैया लेके नौकरको बजारमें भेजो, वाने जाकै अतारसों बूझी कि कस्तूरी है अतार बोलो है तब याने कही एक रुपैयाकी लाओ याने चार रत्ती बांधकै एक पुडियामें देदी, याने जानी बानगी दी है, सो पुडिया खोल सब फांकगयो, और फिर चद्दर बिछायकै बोलो तोल दो अच्छी है, अतारने रुपैया फेर दियो, और कही जाओ रुपैयासेही बीची, याते मूर्ख गुण नहीं जाने हैं तासो समान रहै हैं ॥

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते॥ गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिः कामगयानेन किङ्किणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाऽजितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धस्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥

इतनेपै विघ्नको निवारणकरि जो धर्म अच्छी भांति करे तिन धर्मनसो पाये स्थानमें जैसे यह प्राणी जाँयहैं सो सुनो ॥ २२ ॥ या लोकमें देवतानको यज्ञकरि संतुष्टकरि यज्ञके कर्ता स्वर्गमें जायहै, देवतानकीसी भांति आपुकरी उपजे दिव्य भोग करे हैं ॥ २३ ॥ और तहां अपनें पुण्यकरि पाये उत्तम विमानमें बैठ सुंदर भेष धरें अप्सरानके विषें विहार करते फिरे हैं गंधर्व तिनकी बडाई करे हैं ॥ २४ ॥ स्वेच्छाचारी क्षुद्र घंटिकानके समूहकरि शोभित विमानमें चढ्यो सुखी भयो देवतानके भोगनमें देवस्त्रीनसों विहार करते फिरे है परन्तु आत्मपातकों नहीं जाने है नंदनादि वननमें विहार करते आनंदमें मग्न होयहै ॥ २५ ॥ स्वर्गमें तहांलों सुख करें हैं जहां ताई पुण्य पूर्ण होई, जब पुण्य क्षीण होई तब कालकरि अनचाहत नीचे डारि दिये जायहै ॥ २६ ॥ यह फल सकाम कर्म करे ताको है

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् ॥ नर-
कानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥२८॥ कर्मा-
णि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ॥ देहमा-
भजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९॥ लोकानां
लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि
भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥ गुणाः सृजन्ति
कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान्॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो
भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥३१॥

तहांऊं जो निषिद्ध प्रकार न करे जब होइ और जो असत संग करे अधर्मी होई इंद्रिय जीती न होइ, स्त्रीलंपट होई कामहींमें चित्त होइ, प्राणीनकों दुःख देतहोइ, लोभी होइ कृपण होइ प्राणीनकी हिंसा करनवारे होय ॥ २७ ॥ और जो अविधिसों पशुनको मारिकरि भूत प्रेतगणनको पूजते हैं ऐसे जीव परवश होइ नरकमें परे स्थावर-के भावको प्राप्त होयहै ॥ २८ ॥ विन कर्मनमें दुःखही फल हैं, ऐसे कर्मनकों देहसों करते मरे पीछें फेरि उन कर्मनकरि दुःख भोगकों वैसीही देह धरेहैं, तातें जो मरेंगो ताको कौन सुख है ॥ २९ ॥ लोकपाल कल्पपर्य्यंत जीवेंहै, तोहू विनकों विनके लोकनकों मोतें भय रहे है, मेरे भयतें ये सब देवता अपनो अपनो काम करेंहैं, ब्रह्माकी आयु दोइ परार्द्ध है तोहू वाहूको मोतें भय है ॥ ३० ॥ और कहें हैं कर्म कछू ईश्वर नहीं, ईश्वर नियंता फलको दाता मैं हों, पर मोसों विन कर्मनसों संबंध नहीं, कर्मको संबंध या देहको है, सो प्रकार बतामें हैं, प्रथम सब इंद्रिय कर्मनसों सृजीहैं, गुण सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये इंद्रियनकों सृजे है, आत्मा कछू नहीं करेंहैं, परि यह जीव तो इंद्रियनके संग करि अहंकर्त्ता अभिमान

यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदेव हि ॥ ३२॥ यावदस्याऽस्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य ... समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ कालआत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

धरेहैं, तातें कर्मनके फल भोगेहै ॥ ३१ ॥ जो कहो यह आत्मा अनेक क्यों दीखे हैं आत्मा तौ एकही सुनी हैं तहां कहैहै कि इन गुणनके धर्मसों जबतक अहंभाव है, तबतक अनेक प्रतीत होयहैं, जब ये मायाके गुण छूटि जाइगे तब आत्मा एकही दीखेगो और जहांलों ताकों आत्मा अनेक लगैहैं, तबहीलों पराधीनहू हैं॥ ३२ ॥ जबलों याकू पराधीनता है, तबलों ईश्वरके भय है यह प्रवृत्तिमार्गमें ऐसो दोष है ताकों जे सेवन करैं है वे मोहमें परे शोकही युक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल आत्मा शास्त्र लोक स्वभाव धर्म यह नाम गुण संबंधते कहैहै, गुणसंबंध छूटे यह मेरेही स्वरूप है सबमेंही हो, मायासंबंधतें अनेकरूप दीखै हें तातें निवृत्ति मार्गही उत्तम मुक्तिको कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले हे भगवन्! यह आत्मा गुणनसों मिल्योहै, तोहू गुणकों कार्य्य सुख दुःख कर्मसों बद्ध नहीं है, यातें आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक है, और निर्लेप है आवरणरहित जब तुह्मारे मतमें आत्मा एकही है तौ वह कैसे बंधनमें आवैहै कि जासौं वाको मुक्तिकी अपेक्षा होय है यह कहिये ॥ ३५ ॥

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुञ्जीतो-
त विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत
मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यबद्धो नित्यमुक्त
एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महा-
पुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमो-
ऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो
मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न
बन्धनम् ॥ १ ॥

और बंधे पीछें कौन भांति रहै है मुक्ति होइ तब कैसें रहै सो कहो, कौन भांति रहै, कैसें विहार आहार करे, कौन लक्षणसों जान्यो जाइ, कहां भोजन करे, कहां छोडे, कहां सोवे, कैसें बैठे कहां जाइ, यह दोनो बद्धमुक्त कौन लक्षणनसौं दूसरनकों जाननेमें आवे हैं ॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदांवर ! ये मेरो जो प्रश्न है सो सब मोसों कहो, यह एक नित्यही बद्ध है नित्यमुक्त है सो मोकों भ्रम है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहें अध्यायमें बद्ध और मुक्त और साधु भक्तिके लक्षण हरिने कहेहैं तहां पहिले यह बद्ध और मुक्त जैसे होय हैं सो कहैं हैं ॥ आत्मा बद्ध है, मुक्त है, यह कथन मेरे गुणसंबंधते है, सांचो नहीं, गुणको मूल माया है, मैं तो मायाको नियंता हों तातें मोको न बंधन है न मोक्ष है ॥ १ ॥

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥२॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥३॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥५॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

बंधनगये पीछे धर्म कहैं हैं, मोको मोह सुख दुःख देहकी प्राप्ति ये सब संसारके धर्म मायाकरि होय है, जैसें स्वप्नसौं बुद्धिको विवर्त है तैसें संसार हैं सांचो नहीं है॥२॥ हे उद्धव ! एक विद्या दूसरी अविद्या ये दोऊ मेरी मायाकरि रचीहै, मेरी देहरूपशक्ति है, अनादि देहधारीनकों मोक्ष और बंधन करें हैं ॥३॥ हे महाबुद्धिवंत उद्धव ! ये सब मेरोही एक अंश जीव है ताको अविद्याकरि अनादि बंध हैं विद्याकरि मोक्ष हैं, मोकों न बंध है, न मोक्ष हैं ॥४ ॥ अब याको भेद बतावे हैं परस्पर आत्मा परमात्मा विरुद्धधर्मा हैके एकही देहमें स्थित हैं इनमें एक तौ जीव ईश्वरको भेद द्वितीय जीवकौ जीवसौ भेद यह दो भेद है एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरको धर्म आनंद और जीवको धर्म दुःख है एक नियंता ईश्वर एक जीव है देहाभिमान धरे बद्ध हैं इन दोऊनको भेद दृष्टांतसो कहोहों ॥ ५ ॥ दोऊ पक्षी है चैतन्यरूप करि समान है, दोऊ मित्र है, अपनी इच्छा करि एक

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक्तस्तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥७॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥८॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः॥ ९ ॥

देहरूप वृक्षऊपर आइ बैठे हैं तिनमें एक या देहके फलको भोग करे है दूसरो साक्षी भयो देखे है, भोग नहीं करें, तथापि ज्ञान शक्ति करि अति बलिष्ठ है या भांति एकही रूपके दोऊ विरुद्ध कर्म करें है ॥ ६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपकोहू जाने हैं, और जो जीवात्मा हैं सो न आपकों जाने हैं न ईश्वरकों जाने हैं, वह अज्ञ है, तातें जो अविद्यासों मिल्यो है सो नित्य बद्ध है जो विद्यासों संयुक्त है सो नित्य मुक्त है ॥ ७ ॥ ज्ञानकों विलक्षणता कहिकें स्थितिकी विलक्षणता कहैं हैं, वही पंडित हैं जो अपने स्वरूप और परमात्माको जाने हैं, सो यद्यपि देहहीमें हैं पर देहते न्यारे हैं, देहके धर्म वाको व्याप्त नहीं जैसें स्वप्नतें उठेको स्वप्नकी देहके धर्म नहीं लगै है जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुतें देहतें न्यारोई है पर देहके अभिमानसौ देहमें स्थित हैं, सुख दुःखको भोग करें हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुख दुःख भोगे है ॥ ८ ॥ औरहू विलक्षणता कहैं हैं इंद्रिय अपनें विषयनकों ग्रहण करें है तौहु रागद्वेषादिरहित मुक्त पुरुषमें इन विषयनको भोगताहूं ऐसे नहीं माने है कारण यही है कि विषयनको जो इन्द्री स्वीकार करे है वह गुणनके कार्यको गुणही ग्रहण करैहै हे ज्ञानी ! वासो

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमा-
नोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं वि-
रक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्रा-
णभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वां-
स्तत्र तत्रादयन्गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा
खं सवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसङ्गशितया
छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्त-
ते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधि-
यास् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः १४

आपको निर्लेप माने हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्व कर्मके आधीन हैं, ता देहमें स्थित इंद्री अपने विषयनमें प्रवृत्त होय हैं तहां मैं कर्त्ता हों या अभिमान करि यह आत्मा बंधे हैं, यह अज्ञ हैं शयन आसन गमन स्नान दर्शन स्पर्श आघ्राण भोजन श्रवण ये सब इंद्रियनके धर्म हैं, मेरे धर्म नहीं, वृथा अभिमान करिकें बंधे हैं ॥ १० ॥ ऐसे वैराग्य और विवेक जाको होइ सो बद्ध नहीं होइ है क्योंकि इंद्रियनको विष-यभोग करावे हैं; आपु नहीं करें हैं यातें बंधनको नहीं पावे है ॥ ११ ॥ तहां दृष्टांत है जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है पर सबतें निर्लेप हैं, जैसे सूर्य जलादिकनमें प्रतिबिंबित है तोऊ कंपरूप जलके धर्मते न्यारो है, जैसे वायु सर्वत्र फिरें हैं तोऊ निर्लेप है तैसें आत्मा या देहमें स्थित है इंद्रियनके स्वभावकरि तिन तिन विषयनकों ग्रहण करे है पर विनते भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्य द्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसों सकल संशय काटि नानाविधिके या प्रपंचतें निवृत्त होइ, जैसें स्वप्नते जागिकें स्वप्नके धर्मनतें निवृत्त होइहै ॥ १३ ॥ जाकें प्राण इंद्रिय

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चिद्यदृच्छया ॥ अ-
र्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न
स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो
गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ् मुनिः ॥ १६ ॥ न कुर्या-
न्न वदेत्किञ्चिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारा-
मोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्म-
णि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य
श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

मन बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकल्परहित होय सो देहमेंस्थित है तौहू देहके धर्मनते मुक्त है ॥ १४ ॥ जाको देह स्वेच्छासौं दुर्जनकरि पीडित होइ वा काहूसौं पूजित होइ तो जाको यामें सुख दुःख न होय कछु विकार न उपजे वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ कोई भलौ करे अथवा बुरौ अच्छौ कहे वा बुरौ आप काहूकी निन्दा स्तुति न करे लौकिक व्यवहारते न्यारो रहै गुणदोषनकरके वर्जित जो मुनि है वो समान दृष्टि ह्वैके रहै वही मुक्त हैं ॥ १६ ॥ कर्मादिकनमें उदासीन रहै, न कछु करे, न कछु विचारे भलो बुरो मनमें न धरे, एक आत्माहीसों रमतरहै, या वृत्तिकरि जडकीसी भांति मुनि फिरे ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण है वही मुमुक्षुके साधन है जो पुरुष वेदार्थमें निपुण है वह प्रथम कहे सा धनसौ वेदमें निष्ठा राखके ईश्वरको ध्यानादिक करे तो विनको शास्त्र पढौ भयौ. जैसे बहुत दिननकी प्रसूता गोसौं फिर दूध मिलनौ संभव न होय तो वाके दूधकी आशावाले पुरुषको श्रमकौफल केवल श्रमही होय है ऐसेही क्रिया न करनेसौ शास्त्राभ्यास व्यर्थ है मतलब यह है कि जो वेदमें निष्णात हैके परब्रह्ममें पारंगत न होय तब वाको वेद पढवेको श्रमके

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९॥ यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥२०॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥२१॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥२२॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥

श्रमही फल है जैसे वृद्ध गउकी रक्षा करनवारेको श्रमही फल है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जो कोई दूध दुही गौ, दुष्टनी स्त्री, पराधीन देह, और दुष्ट संगति, पात्र विषे न दियो धन, मेरे नामरहित वचन, इतनी बातें वारे सदा दुःखी रहे हैं और आगेहू दुःख पावेंगे अर्थात् वे पुरुष दुःखीसो दुःखी है नाम महादुःखी है ॥ १९ ॥ मेरो नाम जा वाणीमें न होई तैसी बात न कहे या विश्वकी मर्यादा जन्म पालन नाशरूप पावन मेरे कर्म और लीला अवतारन विषे जगत्को प्रिय श्रीरामकृष्णादिक जन्म जा वाणी विषें न होइ वा वाणीकूं बुद्धिमान नहीं धारण करे॥२०॥या भांति ज्ञानमार्ग कहि समाप्ति करें है,जिज्ञासामार्गसो ऐसे निश्चय करि आत्मा विषें नाना प्रकारको भ्रम दूरि कर विचारसों निर्मल मन मो अंतर्यामी विषे स्थिर करि निवृत्त होइ॥२१॥ जो मेरे विषे मन निश्चल करि धरिवेकों समर्थ न होइ तौ सब कर्म मेरे-विषे अर्पण करे, निरपेक्ष होइ कर्म करे ॥२२॥ ज्ञानमार्ग कठिन है,

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते नि-
श्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥२४॥ सत्सङ्गलब्ध-
या भक्त्या मयि मां समुपासिता ॥ स वै मे दर्शितं
सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥
साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्ति-
स्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे
पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुर-
क्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं
व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगवं-
न्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥

भक्तिमार्गहीं करि कृतार्थ होइगो यह कहे हैं, प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त होइ, पीछे अतिसुंदर लोकनकों पवित्र करनेकों समर्थ मेरी कथा सुने, मेरे जन्म कर्म गावे, स्मरण करे, वारंवार वैसीई लीला करे ॥ २३ ॥ धर्म अर्थ काम मेरे निमित्तही करे, विषयभोगार्थ न करे, मेरोहीं आश्रय करे, हे उद्धव ! तब सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिकों पावे ॥ २४ ॥ ऐसे सत्संगकरि प्राप्त भई भक्तिसों मोको सेवन करे, सो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त होयगो यह मेरे पाइवेको मार्ग साधन करि दिखायो है तब वो अनायास मेरे पदको पावे है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधुके और भक्तिके लक्षण पूछे हैं, हे उत्तम श्लोक ! हे प्रभो ! साधु कैसे होइहैं उनके चिह्न कैसे है और उनकी करी भई भक्ति कैसी होइहै जा भक्तिकों तुम मानो हो और साधु आदर करें है ॥ २६ ॥ हे पुरुषके नियंता ! हे जगतपते ! मैं तुह्मारे विषे प्रणाम करौं हौं, अनुरक्त हूं, शरण आयो हूं, तातें यह मोसों कहिये ॥ २७॥ हे भगवन् ! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रकट भयेहो, प्रकृ-

श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदे-
हिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः
॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः
॥३०॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ॥
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥३१॥
आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ॥
धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

तिहूते परे हो, पुरुष हो, आकाशकी भांति निर्लेप हो, भक्तनकी इच्छाकरि रूप धरोहो ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले जो परायो दुःख न देखिसके और काहूसों द्रोह न करे, क्षमावंत होइ, सत्यही बोलैं निंदा आदि दोषरहित होइ समदृष्टि होइ, सुख दुःखमें समान होइ, यथाशक्ति सबको उपकार करे, सब प्राणिनको अपराध सहे ॥२९॥ काम करकें बुद्धि चंचल न होइ, बाहिरकी इंद्रिय जीतिहोई कोमल शुद्ध चित्त होइ, परिग्रही न होइ, व्यर्थ कार्य न करे भोजन अल्प करे, शांत होइ स्वधर्ममें स्थितहोइ, मेरोई एक आश्रय करे मेरोई स्मरण करे ॥३०॥ सावधान रहे, निर्विकार रहे, धैर्यवंत होइ, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु ये सब जीतें होइ, अभिमानी न होइ, दूसरेकों मान देइ, औरके प्रबोधकों समर्थ होइ, मित्र होइ, सबको भलो चाहें, दयावंत होइ, पूर्ण ज्ञानवान होइ ॥ ३१ ॥ ऐसेही पुरुष साधु कहातें हैं मेरे स्वरूपभूत वेदके धर्म करवेमें अन्तःकरण

१ जब तृष्णा बढती है फिर शांति नहीं होती ॥ सवैया-तिनहुँ लोक अहार कियो सब सात समुद्र पियो पुनि पानी। और जहां तहां ताकत डोलत काढत आंख डरावत प्रानी ॥ दांत दिखावत जीभ हलावत याहिते मैं यह डांकिनि जानी। सुंदर खात भये कितनो दिन ये तृष्णा अजहूं न अघानी ॥ १ ॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥
मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या
स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥ मत्कथाश्र-
वणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दा-
स्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम
पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहो-
त्सवः ॥३६॥ यात्राबलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु॥
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥

शुद्ध होय है नहीं करवेमें दोष है यह जानेपैहू यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनवारे हैं और जो यह धर्म में न करूं तो भक्तिसोही सिद्ध हैजांयगे ऐसे भक्तिकी दृढताके निमित्त दृढ निश्चय करके अपने धर्मको अधिकार रुद्ध हैजाय वैसो विन धर्मनको छोडके जो प्राणी मेरो भजन करैं वोहू महात्मा हैं ॥ ३२ ॥ तब जैसें मेरे चरित्र हे तैसें मोकों जानि, अथवा विना जानेंहू जैसे होय तैसे जे कोऊ अनन्यभाव करि मोकों भजें हैं, वे मेरे परमभक्त हैं ॥३३ ॥ साधुनके लक्षण कहि अब भक्तिके लक्षण कहें हैं मेरे चिह्न प्रतिमा आदि लें अनेक भांतिके और मेरे भक्तजनको दर्शन स्पर्शन पूजा सेवा स्तुति प्रणाम गुण कर्म कीर्तन ॥ ३४ ॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करिवेमें श्रद्धा मेरो ध्यान करे जो कछू मिले सो सब मोकों समर्पण करे, दास्यभावकरि अपनी आत्मा निवेदन करे ॥३५॥ मेरे जन्म कर्म गावे, मेरे जन्माष्टमी आदि पर्व विषे फूल नैवेद्य आदि कर पूजे, गीत नृत्य वादित्र गोष्ठीकरि मेरे मंदिरमें उत्सव करे ॥३६ ॥ मेरे निमित्त यात्रा करे, पुष्पादिकनकरि पूजा करे, भेट समर्पे, वर्ष प्रतिवर्ष उत्सव करे,

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपविलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

वैदिक तांत्रिक दीक्षा लेइ, मेरे व्रत करे ॥ ३७ ॥ और मेरी प्रतिमा स्थापनमें श्रद्धा राखे, आपुतें अथवा औरसों मिलिकैं मेरे निमित्त फूलनको बाग मंदिर क्रीडा स्थल नगर गामके करिवेविषे उद्यम करे ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देनों, लीपनों, छिरकाउ करनो, चौक पूरे और रंगवल्ली आदि चित्राम करनो, ऐसें मेरे गृहकी सेवा करे दासकी भांति निष्कपट सेवा करे ॥ ३९ ॥ आपुअभिमान न करे, दंभ न करे जो करे सो कहे नहीं, मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसों अपनो गृह कार्य न करे ॥ ४० ॥ "और ग्रंथनमें कह्यो है छै मासके उपवासन करि जो फल होइ सो कलियुगमें विष्णुके नैवेद्यके शेषसौ पुण्य होई जाके हृदयमें हरिको रूप होइ मुखमें हरिनाम होइ उदरमें हरिको प्रसादी नैवेद्य होइ माथेमें प्रसादी पुष्पादिक होइ सो हरिको रूप है, अथवा और देवताको समर्पी वस्तु मोकों न अर्पण करे" यह अर्थ और ग्रंथनमें हैं, "विष्णुके नैवेद्य अन्नकरि और देवतानकों पूजिये, फेरि वुह प्रसादी नैवेद्य पितरनकों दीजिये, तो अनंत पुण्य होइ, पितरनको शेष जो हरिको देइ तो पितर वीर्य्य खानहारे होयहैं फेरि क्लेश पावे, दीपक पर्यंत मेरे मंदिरमें निवेदन कियो होइ ताके प्रकाशसों अपनों कार्य न करे" जो वस्तु या लोकमें आपुकों

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भू-
रात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥४२॥ सूर्ये तु
विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु
विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुस-
त्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया
तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥४४॥ स्थण्डिले मन्त्रहृद-
यैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन
यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शङ्ख-
चक्रगदाम्बुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चे-
त्समाहितः ॥ ४६ ॥

अति प्रिय होइ, निषिद्ध न होइ सो मोकों अर्पणकरे. तो वुह वस्तु अनंत फलकों करे ॥ ४१ ॥ अब ये ग्यारे ठौर पूजनकों कहैहैं हे उद्धव ! सूर्य्य अग्नि ब्राह्मण गौ वैष्णव आकाश वायु जल भूमि आत्मा सब प्राणिमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥४२ ॥ तहां जाकी पूजा जैसें कीजे सो कहैं हैं, वेदोक्त विद्याकरि सूर्य्यमें मेरी पूजा करे, अग्निमें घृत होमकरि मोकों पूजे, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतकरि पूजे, गायमें अच्छे सुन्दर तृणादिक करि सेवा करे ॥ ४३ ॥ वैष्णवमें अपने बंधुकी भांति आदर करि मेरी पूजा करे हृदयआकाशमें ध्यानकरि पूजे वायुमें प्राण बुद्धिकरि पूजे जलमें तर्पण आदि द्रव्यकरि पूजे ॥४४॥ भूमिमें गोपमंत्र न्यासकरि मेरी पूजा करे अपनपेमें आत्माकी पूजा भोग करिकैं जो भोग करे सो सब आत्माकों समर्पे, सब प्राणिमात्रमें समदृष्टि करि मेरी पूजा करे, मैं अंतर्यामी हो ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इन स्थलनमें शंख चक्र गदा पद्म धरे चतु-

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ्ग प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवाद एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मुझ शांतिरूपकों ध्यान कर मेरी पूजा करे जो निश्चयमन ह्वैकरि यज्ञ वापी कूप तडाग बागसों मेरी पूजा कर साधुकी ॥ ४६ ॥ सेवा करि मेरा स्मरंण करते २ मोमें परम भक्ति प्राप्त करै हैं ॥ ४७ ॥ या प्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषतें भक्तिमार्गकों श्रेष्ठ कहैं हैं, हे उद्धव ! पहेले सत्संग होइ तातें भक्ति होइ, संसार तरणकों यातें और उपाय उत्तम नहीं है जातें साधुनको एक मैंही आश्रय हो तातें अतिश्रेष्ठ उत्तम वैष्णवनको सत्संग अति श्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥ हे उद्धव ! तुम सब ओरतें मेरे हो सुहृद् सखा हो तातें तुमसों कह्यो हैं यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुम्हारे सुनाइबेको में कहूंगो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं
धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न
दक्षिणा ॥१॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा
यमाः ॥ यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्
॥ २ ॥ सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥ ब-
हवो मत्पदं प्राप्ताः स्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषापर्वा
बलिर्बाणो मयश्चाथ बिभीषणः ॥ ५ ॥

बारहें अध्यायमें सत्संगकी पहेलें सत्संगकी महिमा और कर्मनकों करिवो कहकर तातें आगे तिनके त्यागकी अवस्था कहें हैं श्रीभगवान् बोले ॥१॥ हे उद्धव ! योग और तत्वनको विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याको अध्ययन तप त्याग अग्निहोत्रादिक वापी कूप तडाग दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रत यज्ञ वेद तीर्थ नेम संयम ये सब मोको ऐसे वश नहीं करि सकैहै जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तको सत्संग मोको वश करे हैं कारण कि सत्संग सब कुसंगनको छुडायवेवारो है ॥ २ ॥ दैत्य राक्षस पक्षी मृग गंधर्व अप्सरा नाग सिद्ध चारण गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर और मनुष्यनमें वैश्य शूद्र स्त्री ये सब नीच जाति राजस तामस स्वभाव युक्तहू विन विन युगनमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त भयेहैं, औरहू बहुत हैं, वे वृत्रासुर प्रह्लाद वृषपर्वा बलि बाणासुर मय विभीषण ॥ ५ ॥

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥ ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं दद्दशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ११

सुग्रीवहनुमान् जाम्बवान् गजेंद्र जटायु तुलाधार वैश्य व्याध कुब्जा गोपी व्रजविषें यज्ञपत्नी ऐसें और अनेक मोकों प्राप्त भये ॥ ६ ॥ ये कोऊ वेदार्थ नहीं पढे हैं; महत्पुरुषकी उपासना नहीं करी, व्रत, दान, तप कछु न करेहे, एक मेरे संगते मोकों प्राप्तभये ॥७॥ गोपी गाय यमलार्जुन मृग ये और मूढ बुद्धि कालीतें लेकें नाग सिद्ध अनायास मोकों प्राप्त होतभये ॥ ८ ॥ सांख्य योग दान व्रत तप यज्ञ व्याख्यान अध्ययन संन्यास इतने जतनहू करि जो मोकू न पावतभये, ताकों एकभावमात्रकरि पावतभये॥९॥ अब मुख्य उत्तम भाव- गोपीनको कहैं हैं, तातें पहिलें गोपीनके भावकी स्तुति करें हैं, हे उद्धव ! जब अक्रूर आइकें बलदेवसहित हमको मथुरा लेगये, तब दृढ प्रीति करि मोविषें आसक्त चित्तवारी वियोग करि दुःसह चित्त गोपी सुखके अर्थ मोतें औरकों न देखत भईं ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वृंदावनमें

ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदं-
स्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्र-
विष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारम-
त्स्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः सङ्गाच्छ-
तसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां
प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुत-
मेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहि-
नाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः
॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव
योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति
मे मनः ॥ १६ ॥

फिरते विनकों अतिप्रिय मेरे संग जे जे रात्रि एकक्षणकी समान बीती वे वे रात्रि मो विना विन गोपीनको कल्प समान भईं ॥ ११ ॥ मेरेमें गोपियनकी बुद्धि अधिक आसक्त ह्वैगईही विन्हें पति पुत्रादि तथा देहको तथा लोक परलोककौ कछु ध्यान न रह्यौ जैसे समाधिमें मुनियनको नाम स्वरूपकौ ध्यान नहीं रहैहै वा जैसे नदी समुद्रमें मिल जाय हैं तैसे गोपी मेरे स्वरूपमें लीन होईं ॥ १२ ॥ या प्रकार केवल मेरी इच्छावारी सहस्रशः स्त्री यद्यपि मेरे स्वरूपकों नहीं जानतीही तौहू जारबुद्धिसौं जाने भए मोपै ब्रह्मके सत्संगकी महिमासौं मुक्त ह्वैगई ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे भजनकौ ऐसो प्रभाव है,जो जारबुद्धिसौं भजन करेकेंहू मोकों प्राप्त भईं,तातें तुम श्रुति स्मृतिके विधि निषेध छोडि प्रवृत्तिनिवृत्तिधर्म छोडि सुनोसुनायो छोड ॥१४॥सब देहधारीनकी आत्मा में हूं, तातें सबनमें मेरो भाव राखि मेरी एक शरणकों प्राप्त ह्वैके तुम निर्भय होउगे॥१५॥तहां उद्धव पूछे

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७॥ यथाऽनलः खेनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥

है, हे योगेश्वरनके ईश्वर ! तुम्हारी बात सुनकर आत्मा विषे मेरो संदेह निवर्त नहीं होयहै ताते मन भ्रमें है, प्रथम तुमने कह्यो मेरो भजन करो अब कहोहो सब धर्म छोडि मेरे शरण आओ, तहां अब कहा कीजे त्याग करिये अथवा भजन करिये, यह भ्रम तुम दूरि करो, तब श्रीकृष्ण कहैहै ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! पहिलें तो यह जीव ईश्वर है, ब्रह्म है, सो अविद्याके संग करि अपनो धर्म भूलिगयोहै, अविद्याके धर्महीकों अपनें धर्म समझि अहंकर्त्ता अभिमानकरि बंधे हे, जब अविद्याके धर्म दूरि होई, तब चित्त शुद्ध होइ, ताके निमित्त निष्काम कर्म करनो कह्यो, जब चित्त शुद्ध भयो तब कर्मको त्याग कह्यो वाको विवेक भयो तब विवेक करि सर्वत्र वह मेरो रूप जानें है अब कर्मको अधिकार भयो ज्ञानको अधिकार भयो ताते सब कर्म तजिकैं मेरी शरण आउ यह उपदेश देतभये, अब ईश्वरतें वाणी इंद्रियद्वारा जीवके संसारको कारण भूतप्रपंचकी उत्पत्ति कहैं हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रनमें प्रगट होय हैं वा प्रकटताकों कहैं हैं, सो ईश्वर नादवंत पर नाम प्राणसहित आधार चक्रनमें प्रविष्ट होइकरि मनोमय सूक्ष्म रूप देखें, और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्धचक्र विषें आइकरि मुखमेंहूंस्वरादिक मात्रा उदात्तादिक स्वर अकारादि अक्षररूप वैखरी नाम अतिस्थूल नाना विधि रूप होयहैं ॥ १७ ॥ तहां दृष्टांत कहैंहैं जैसें आकाशमें गर्मीरूप,

एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रु-
तिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्त्व-
तमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिर-
व्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव
भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मि-
न्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः॥य
एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते २१

अग्निरूप अप्रकट है, बलकरि काष्ठमें मथेतें वायुके सहाइकरि प्रहिलें सूक्ष्मरूपनिकसे, पीछें हविष्य करि बढेहै, तैसे यह वाणी मेरे प्रगट होवेको स्थान है ॥ १८॥ हाथनको धर्म क्रिया, चरणको धर्म गमन, और गुह्येंद्रियको धर्म मलादिविसर्जन, आघ्राण रस दर्शन श्रवण ये सब ज्ञानेंद्रियके धर्म, संकल्प मनको धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्त-को धर्म, अभिमान अहंकारको धर्म, सूत्र मायाको धर्म सत्त्व रज तम इन तीनि गुणको विकार अधिदैव अध्यात्म अधिभूत ये सब मेरे प्रगट होयवेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है एकही है अप्रगट है कालकरि न्यारी करी वाणीरूप इंद्रियकी शक्ति याको अनेक भांति प्रकाश है जाते आदि है तीन गुणनको आश्रय हैं सृष्टिकमलको कारण भूत हैं जैसें बीज खेतकों पाइ अनेक भांति प्रकाशे है ऐसेही यह आदि कारण ईश्वरभी कालकी गतिसों माया-को अंगीकार कर प्रपंचरूप है जाय है ॥ २० ॥ तहां दृष्टांत कहे हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान पट जैसें तंतुनमें ओत प्रोत है और तंतुनसों पृथक् नहीं है याही प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें है वासों भिन्न नहीं है या प्रकार समष्टि व्यष्टिरूप अविद्यासों आत्मामें अध्यास कियो भयो प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्ता भोक्ता आदि

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चर-
सप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो
द्विफलोऽर्के प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदन्ति चैकं फलमस्य
गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसा य एकं बहु-
रूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३॥ एवं गु-
रूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्य-
जास्त्रम् ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एका-
दशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

संसारको कारण है यासो जब यथार्थ रीतिसो आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै वा समय कामादि सबको त्याग करनो कह्यो है यह अनादि कालसो प्रवृत्तिवारो प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादिरूप पुष्पफलनको उत्पन्न करै हैं ॥ २१ ॥ द्वै पुण्य पाप याके बीज हैं अनेक भांतिकी वासना याकी जर है, तीनों गुण (रजोगुण तमोगुण सतोगुण) याकी पीडि हैं, पांच रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये रस होय हैं, पांच महा भूत याके स्कंध है, एकादश इंद्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माको घर हैं, वात पित्त कफ तीनी वल्कल है, दो फल सुख दुःख हैं, सूर्य्यमंडलपर्यंत यह वृक्ष है तातें आगें संसार नहीं ॥ २२ ॥ याके फलके भोक्तानको कहैं हैं, याके एक फल दुःख रूपको गृहस्थ ग्रामचारी कामी समान गीदड भोग करै है दूसरो फल सुख अरण्यवासी परमहंस संन्यासी भोग करै हैं तातें यह एकही पर-मात्मा मायामय अनंत रूप हैं इतनो तत्वार्थ गुरुद्वारा जानें जानो ताते सब देह जान्यो ॥ २३ ॥ या भांति धीर सावधान तुमहू गुरुकी

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

सेवा करियो एकांत भक्त करिकैं तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसों त्रिगुणमय या लिंगशरीरकों काटि परमात्माकों मिलि पीछें सब साधन छोडि दीजो ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहें अध्यायमें सतोगुणकी बुद्धिकारि विद्याको उदय होयहैं तातें गुणबंधन छूटे सो प्रकार हंसकी कथाकारि श्रीकृष्ण कहैंहैं श्रीभगवान बोले सुनो उद्धवजी जब सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं या कारण सत्वगुणकी वृद्धि कर रजोगुण तमोगुणकी वृत्तिनकों नाश करै और सत्वदयादि रूप सत्वगुणको उपशमरूप सत्वगुणसों नाश करनो ॥ १ ॥ अब कहै हैं रजोगुण तमोगुणके आगे सतोगुण कैसें बढे, जब सतोगुणबढे, तब मेरी भक्ति लक्षण धर्म होइ, वातें रज तम दूरि होइ ॥ २ ॥ सत्त्वकी वृद्धि यातें होयहै यातें भक्ति अतिश्रेष्ठ है रज तमके दूरि भये रज तम मूलवारो अधर्म निश्चय करि शीघ्र दूरि होय हैं ॥ ३ ॥

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ॥
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥
तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निन्दन्ति
तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥५॥ सात्त्विकान्येव
सेवेत पुमान्सत्त्वविशुद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं
यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा
शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्य-
ति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

शास्त्र जल प्रजा देश काल कर्म जन्म ध्यान मंत्र संस्कार ये सब गुणके हेतु हैं ॥ ४ ॥ येऊ दश सात्त्विक राजस तामस हैं, इनके मध्ये जाकी वृद्धपुरुष बडाई करें हैं सो सात्त्विक हैं, जाकी निंदा करें हैं सो तामस हैं, न जाकी स्तुति करें हैं न निंदा करें हैं सो राजस है ॥ ५ ॥ सतोगुण बढायवेकों पुरुष सात्विक निवृत्तिशास्त्र सेवे, प्रवृत्ति मार्गके पाखण्डीनके शास्त्र न देखे, जल तीर्थहीकों सेवे, और सुगंध जल न सेवे, संग निवृत्तिमार्गनकोही करे, दुराचारिनकों न करे देश एकांतही सेवे चोर ठग जूआ खेलनवारेनको संग न करे, ध्यानको काल ब्रह्म मुहूर्त आदि सेवे अर्धरात्र प्रदोष काल न सेवे कर्म नित्यही कर काम्यकर्म अभिचार कर्म न करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्म लेय, क्षुद्र देवतानकी दीक्षा न लेइ; श्रीकृष्णहीको गुरु करे, अस्त्रनकों शत्रुनकों ध्यान न करे, जब प्रणवआदि उत्तम मंत्रको जपे, काम्यमंत्र क्षुद्र मंत्र न जपै, जो संसारसौ आत्माको शोधक होइ सो करे देह गृहकों न करे या प्रकार सब सात्त्विक सेवे तब सतोगुणकी वृद्धि होइ राजस तामस छूटे, तब भक्तिरूपी तप धर्म होइ, तातें मेरे स्वरूपकों ज्ञान होइ ॥ ६ ॥ जैसें बांसनके वनकी अग्नि आपुसमें घिसिके उठ सब अरण्यकों जारि ईंधन

उद्धव उवाच ॥ वदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पद-
मापदाम् ॥ तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराज-
वत् ॥ ८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः
प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजो घोरं ततो वै-
कारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः
सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्या-
द्धि दुर्मते ॥ १० ॥ करोति कामवशगः कर्माण्यवि-
जितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमो-
हितः ॥११॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः
पुनः॥अतन्द्रितो मनो युञ्जन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२॥

घटे पर आपुही शांत होइ है तैसें गुणकें क्षोभतें उपज्यो देह आपुही शांत होइहैं ॥ ७ ॥ तब उद्धवजी पूछें हैं हे श्रीकृष्णजी ! बहुधा सब मनुष्य कहैं है विषय दुःखरूप है, वातें दुःख पावे हैं, तऊ क्यों वाहीको यह पुरुष कूकर गर्दभ बकराकी समान निर्लज्ज होइ वाहीमें प्रवृत्त होय है ॥८॥ श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव ! जब यह विवेककरि रहित होय है, तब याके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सांचीसी होयहै, तब सात्विकहू मन दुःखरूप राजस धर्मसों व्याप्त होयहैं ॥ ९ ॥ जब रजोगुणसों व्याप्त होइ, तब मनमें संकल्प उपजें, संकल्पतें विषयको ध्यान करे, तातें या दुष्टबुद्धि पुरुषकों काम उपजे ॥ १० ॥ पीछें तिनके वश होइ रजोगुण वेगकरि मोहित भयो यह अजितेंद्रिय दुःखही फलवारे कर्मनको करे ॥ ११ ॥ याहूमें जो विवेकी होइ सो यद्यपि रजोगुण तमोगुण करि विक्षिप्त मन है सावधान है तौहू मनकूं खेचि खेचि करि राखे, तब वह दोष जानिकें विषयमें आसक्ति न होइ ॥ १२ ॥

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः॥ १३॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥ १४॥ उद्धव उवाच॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम्॥ १५॥ श्रीभगवानुवाच॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम्॥ १६॥ सनकादय ऊचुः॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः॥ १७॥ श्रीभगवानुवाच॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः॥ १८॥

जो विवेकी सनेहते मेरे विषें मन लगावे आलस्य छोडि श्वास रोंकि आसन दृढकरि मेरे विषें मन स्थिर करे॥ १३॥ हे उद्धव! मेरे शिष्य सनकादिकनने इतनोही योग बतायो है कि यह जीव सबतें मन खैंचि प्रत्यक्ष मोविषें राखे॥ १४॥ उद्धवजी बोले हे केशव! सनकादिकनको जा रूपसों जा समय यह योग तुमने कहो, सो तुह्मारो रूप और वह समय जानवेकी इच्छा है सो कहिये॥ १५॥ श्रीकृष्ण बोले एक समय ब्रह्माके मानसी पुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसों पूछतभये॥ १६॥ यह चित्त विषय धर्ममें प्रविष्ट है और विषय चित्तमें प्रविष्ट है हे प्रभो! तातें जो कोऊ मोक्ष चाहे, संसारपार भयो चाहे वाको चित्तको विषय संबंध क्योंकर छूटैहै॥ १७॥ पुत्रनके पूछेतें ब्रह्मा

स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हं-
सरूपेण सकाशमगमन्तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उप-
व्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा
पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्ट-
स्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव
निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः
प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क
आश्रयः ॥ २२ ॥

जो कहतभये सो श्रीकृष्ण उद्धवसों कहैंहैं या प्रकार पूछेतें स्वयंभू ब्रह्मा वडे देव विश्वके पालक विचारनलगे, परन्तु प्रश्नको पार न पावतभये जाते कर्म करि विनकी विक्षिप्त बुद्धिही ॥ १८ ॥ तब प्रश्नके उत्तरके निमित्त ब्रह्माने मेरो चिंतवन कियो तब मैं हंसरूप होइ ब्रह्माके निकट आवतभयो ॥ १९ ॥ ता मोकों देखिके सब प्रणाम करि ब्रह्माको आगे करि सनकादिक मेरे निकट आइकै तुम कौन हो ऐसे पूछतभये ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्वके जानिवेकी इच्छाकारि मुनिने जब या भांति मोसों पूछो तब मैं जो विनसो कहत भयो सो तुम सुनो ॥ २१ ॥ हंसरूप भगवान् सनकादिकनसूं कहैंहैं तुम आत्माको आगे कर प्रश्न करौ हो वा आत्माके उपाधिरूप भूतसमूहको लेकै प्रश्न करौहो जो आत्माको अधिकार कर प्रश्न करौ हो तौ परमार्थसौ आत्मामें अभेद हेवेके कारण तुम कौन हो यह प्रश्न करनो कि जो अनेकनमें एकको निश्चय करवेके लिये है संभव नहीं हो सकैहै और मैं तुम्हें कोनविषे लैके उत्तर देउँ आत्मा कोई जाति वा गुणादि रूप होयतौ उत्तर दिये जाय कि मेरी यह जाति और मोमें यह गुण है परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं यासौ तुह्मारा प्रश्न नहीं बन सक्ता ॥ २२ ॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवा-
निति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा
वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ॥ अहमेव न
मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥२४॥ गुणेष्वाविश-
ते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं
गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥२५॥ गुणेषु चाविशच्चित्तम-
भीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं
त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धि-
वृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनि-
श्चितः ॥ २७ ॥

और जो पंचभूत संघात रूपको प्रश्न है अनर्थ रूप है देव मनुष्य आदि देह सब पंचभूतात्मक है वस्तुते सब समान हैं अपने कारणते न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एकही है, ब्रह्मरूपही है, ये नाम रूप न्यारे न्यारे धर लिये हैं सो अज्ञान हैं ताते याके मैं उत्तर कहा देउँ ॥ २३ ॥ मन करि वचनकरि दृष्टिकरि और इंद्रिनकरि जो ग्रहण कियोजाय हैं सो में हूं और मोते न्यारो नहीं, यह तत्वके विचार करि-जानो ॥ २४ ॥ या प्रकार विनके प्रश्नके खंडनके मिसकरि आत्माको स्वरूपकह्यो अब ब्रह्माहूको जो अशक्य उत्तर हो ताको उत्तर देइहै ये विषय और चित्त दोऊ गुथेहैं ब्रह्मरूप जीवको देह है सो उपाधि है सांचो नहीं आपुको ब्रह्मरूप करि जानें विषयनकों मिथ्या करि जानें वैराग्यकरि भगवान्‌को भजनकरे तब उपाधि छोडि मुक्त होइ ॥ २५ ॥ तातें वारंवार विषयनकी सेवा करत विनकी वासनातें विषयनमें चित्त प्रविष्ट होयहै तातें विषय और चित्त ये दोऊ मेरो रूप जाने तब छूटे ॥ २६ ॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीनि अवस्थाकरि रहित जीव शुद्ध

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि
तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥२८॥ अहं-
कारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य
संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥ यावन्नाना-
र्थधीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः॥जागर्त्यपि स्वप-
न्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥ असत्त्वादात्मनो-
ऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य
मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥

आत्मरूप कैसे होइ तहां कहैहै ये अवस्था तीनि गुण करिके होयहैं सो बुद्धिहीकी वृत्ति अवस्था हैं जीव इन अवस्थानते न्यारो हैं यह निश्चय कीनोहै याते जीव इन सबनको साक्षी है ॥ २७ ॥ जो यह साक्षी भयो तो न्यारो क्यों है तो मैं सोयो जाग्यो ऐसे क्यों कहै है जब अहंकारके धर्मकारि संसारको बंधन है तब मैं जागतहूं सोवतहूं यह बुद्धि है जब अहंकार देहते छूटे आत्माविषे दृष्टि होइ तब ये अवस्थाहू सब जातरहें विषय और चित्तको परस्पर त्याग होई ॥ २८ ॥ यह बंधन देहके अभिमानतें हैं, याहीतें आत्माहूकी अनर्थ लगै है, ऐसें समझि वैराग्य कारि आत्मामें चित्त राखि संसारकी सब चिन्ता छोडे ॥ २९ ॥ जहांलों याकी भेद बुद्धि युक्तिन करि न निवृत्त होइ, तहांलों यह अज्ञानी कर्मादिकमें जागतो अर्थात् जानकैहू स्वप्नमें अपनेको जाग्रत मानते भये मनुष्यकी भांति स्वप्नकोही देखै है कारण कि वासों यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ ये सब देह और देहको कियो सबनसों भेद वर्ण आश्रम स्वर्ग आदि फल कर्म सब आत्माके धर्म नहीं; ये देहके धर्म हैं, अविद्यातें होय हैं, तातें मिथ्या हैं उत्तम नहीं जैसें स्वप्नके देखनवारेके सब मिथ्या मनोरथ हैं ॥ ३१ ॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान्॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३॥ ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम्॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः॥ ३४॥

यह जीव जगत्में विषयभोग करै हैं, सो भोग एक क्षण है, नित्य नहीं जैसें बाल्य और तारुण्य आये और गये, जाग्रतके समान स्वप्नमें भोग करे हैं, और सुषुप्तिमें ये सब धर्म लीन होंय हैं, एकही आत्मा रहे हैं, मैंने पहिलें स्वप्न देख्यो पीछें मैं सुखसों सोयो, कछु होस न रह्यो, या अनुभवके स्मरणते तीनिहू अवस्था बुद्धिकी हैं, तिनको साक्षी एक आत्मा रहै है, और सब लीन होय है आत्मा सब इंद्रियनको ईश्वर है॥ ३२॥ या प्रकार ये तीनों अवस्था मनके वशहैं, आत्माको नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्या करि आपकों मानलेय है ऐसो निश्चय करि सब संदेहके स्थान अहंकारको विवेक अनुमान प्रमाण वचनसौं उपजे ज्ञानरूप खड्गसौं काटिकें हृदयमें सदा स्थिति मोको भजन करे ॥ ३३॥ अनुमान कौन प्रकारको हैं सो कहैं हैं यह जगत् जो दीखै है सो सब मनको विलास हैं भ्रम और मिथ्या है यह द्वैतहू भ्रांतिरूप है कारण यह कि अति चंचल है जो चंचल हो वह अलातचक्रकी समान भ्रांतिरूप है ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रांति होय है यासौं भ्रांतिको अधिष्ठानरूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकारसौं दिखाइपरै है और जो यथार्थ

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात्॥ ३५॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः॥३६॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः॥ ३७॥

विचारसौं देखै हैं तौ यह त्रिगुणात्मक मायाकौ भ्रम स्वप्नकी समान है ॥ ३४॥ तातें हे उद्धव! ऐसें प्रपंचते दृष्टि फेरि तृष्णा छोडि आत्मसुखके विचारमें तत्पर होय इंद्रियनके धर्म सब छोडि देई, कदाचित् कहो देहवंतकों देहकी चेष्टा कैसे छुट सकैहै और न छुटवैसों द्वैतही हे जायगो तहां कहै हैं जो कदाचित् कहूं वैसेही देहकी चेष्टा देखी जायहै परि वह चेष्टा अहंकाररहित हैं, सांची नहीं जातें प्रपंचमें विनकी मिथ्या बुद्धि है जो मिथ्या जानिकै छोड दियो जाय है वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करैहै यह निश्चय हैं देहपर्यंत कर्मनके संस्कार हैं ॥ ३५॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष या विनाशी देहको दैवगतिसो आसन उठा वा आसनमें स्थित उठकर खडो भयो बाहरको गयो अथवा दैवगतिसो फिर आयौभया नहीं देखै है जैसे मदिराके पानसौं मत्तभयो पुरुष पहरे वस्त्रको नहीं जाने याही प्रकार ज्ञानी ब्रह्मको प्राप्त हो चुकौहो ॥ ३६॥ तहां तर्क करे हैं जो देहको न जानें तो देह क्यों नहीं गिरे तहां कहेहैं देहहू यह दैवके आधीन हैं जबलों याको प्रारब्ध कर्म है तहांलों प्राण इंद्रिय समेत देह रहैहै ताते जो समाधि योगमें आरूढ हैं परमार्थ वस्तु

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां यजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसङ्गादयो गुणाः ॥४०॥ इति मे च्छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवत एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आत्मस्वरूपकों जानें हैं सो प्रपंचसहित स्वप्नसमान या देहको नहीं भजे है ॥३७॥ हे ब्राह्मणो! मैं यह मैंने तुमसो आत्मदेहको विवेक सांख्ययोगको रहस्य कह्यो, तुमसो धर्म और ज्ञान कहिवेकूं मैं यज्ञरूप विष्णु आयोहूं सो जानो ॥३८॥ हे द्विजश्रेष्ठ! योगसांख्य, सत्यऋत अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म तेज श्री कीर्ति धर्मनको मैंही परमस्थान हों ये सव मोहिमें रहैहै ॥ ३९ ॥ सब गुण मेरे आश्रय रहै हैं, मैं निरपेक्ष हूं सुहृद परम प्रिय हूं सबकों आत्मा सब मोकों समान हैं, संग काहूसो नहीं ऐसे गुण मोहीमें हैं ॥ ४० ॥ ऐसे मेरे वचन सुनि संदेह निवर्त्तकरि सनकादिकमुनि अतिभक्तिसों मेरो आदर करत भये ॥ ४१ ॥ जव विन ऋषीननें भली भांति स्तुति कीनी और पूजा करी तब ब्रह्माके देखतेही मैं अपनें धामको आवतभयो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच ॥ वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवा-
दिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता
॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः॥
निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशन्मनः ॥२॥ श्री-
भगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञि-
ता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः
॥३॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो
भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पि-
तृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धग-
न्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥

अब चौदहके अध्यायमें परम श्रेष्ठ भक्ति है यह कहैंगे, और साधन समेत ध्यान कहैंगे ॥ उद्धव बोले हे श्रीकृष्ण महाराज ! जो ब्रह्मको विचार करें हैं, वे ब्रह्मकी प्राप्तिके साधन बहुत बतावें हैं, विन सबनमें जो मुख्य एक साधन है, सो कहो ॥ १ ॥ हे ईश्वर ! तुमने निरपेक्ष भक्तिही एक मुख्य साधन कहोहो कि सब संग छोडि भक्ति योगकरि तुमारे विषे चित्त राखे ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे उद्धव ! भक्तिही सबसे श्रेष्ठ है यह मेरी वेदरूप वाणी प्रलय कालमें नष्ट हैगईही यह वह वाणी है जासों प्राणीको मनमोमें लगजाय यह पेहले मैंने ब्रह्मा-जीसो कहीही ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने वडे पुत्र मनुसो वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु मरीचि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु ए सात ब्रह्माके पुत्र वे वा वाणीको ग्रहण करतभये ॥४॥ विनसों विनके पुत्र दैत्य देवता गुह्यक मनुष्य सिद्ध गंधर्व विद्याधर ॥ ५ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्वयस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ॥ पारम्पर्येण केषांचित्पाखण्डमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ १० ॥

चारण किंदेव (मनुष्य जातिमें देवतुल्य) किन्नर नाग राक्षस किंपुरुषादिक ये सब वह वाणी ग्रहण करतभये जिनकी वासना रजोगुण तमोगुण आदिसों अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनानसो देव दैत्य मनुष्यादिक प्राणिनके शरीर भिन्न भिन्न होय हैं और विनकी बुद्धिनमेंहू भेद पड़े है इन सबनने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न २ वेदको व्याख्यान कियो है ॥ ७ ॥ या भांति प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्यनकी बुद्धि विचित्र भई और मतिनमें भेद पडगये काहू प्राणीके उपदेशकी परंपराते वेदविरुद्ध पाखंड बुद्धि भई ॥ ८ ॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ! मेरी मायाकरि मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकार इच्छा अनुसार कल्याणके साधन कहै हैं ॥९॥ कोऊ धर्महीको मुख्य कहै है, कोऊ यशको, कोऊ कामको, कोऊ सत्यको, कोऊ शमदमको, कोई ऐश्वर्यको, स्वार्थको कहैं हैं कोऊ दान दीजे भोग कीजे यही कहैं हैं कोऊ यज्ञ तप दान व्रत नेम संयम ये सब साधना कहैं हैं ॥ १० ॥

केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ आद्य-
न्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्का-
स्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥ ११॥ मय्य-
र्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयात्मना
सुखं यत्तत् कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२॥ आकिं-
चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः॥ मया संतुष्ट-
मनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न
महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न यो-
गसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽ-
न्यत् ॥१४॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंक-
रः॥न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥१५॥

इन प्राणिनको अपने कर्मानुसार लोक कर्म फलसो मिलै हैं वे सब परिणाममें दुःखसो पूर्ण किंचित आनन्दयुक्त शोकसो व्याप्त आदि अन्तवारे नाशवान् हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मेरे विषें जिनने आत्मा समर्पण कियो है, जे सबसौं निरपेक्ष हैं विनकों मेरे परमानन्द स्वरूपकी प्राप्तिसों सुख मिल रहेहै वह सुख विषयनमें लगे पुरुषनको प्राप्त नहीं होयहै जो भक्तनको सुख है वह विषयी पुरुषनकों कहां ?॥ १२ ॥ जो अकिंचन दांत समचित्त वाहीसे संतुष्ट मन हैं तिनको सब दिशा सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिनने मेरे विषें आत्मा समर्प्यो है विनको मो विना और कछु न चाहिये, एक मैंही वाको प्रिय हो, ब्रह्मलोक, इंद्रको समस्त राज्य भूमिको राज्य पातालको राज्य अणिमा महिमादिक योगसिद्धि मोक्ष पर्यंतहू विनको वांछित नहीं ॥ १४ ॥ तातें भक्तनके समान मोकों कोऊ प्यारो नहीं, हे

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजा-
म्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥१६॥ निष्किंचना
मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्स-
लाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत् तन्नैरपेक्ष्यं न
विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो वि-
षयैरजितेन्द्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयै-
र्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्ये-
धांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि
कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक कहा कहूं, मेरी आत्माहू मोको प्रिय नहीं, हे उद्धव ! जैसे तुम मोको प्यारे हो तैसें मेरो पुत्र ब्रह्मा महादेव संकर्षण लक्ष्मीहू मोको प्रिय नहीं, यह अतिसंतोषसों श्रीकृष्ण कहत भये ॥ १५ ॥ जो मेरो भक्त निरपेक्ष शांत निर्वैर समदृष्टि होइ तांके संग मैं नित्य रहोंहों, जहां वह जाइ तहां वाके संग जाऊहूं विनके चरणरेणुसों मैं अपनेमें रहनेवारे सब ब्रह्माण्डनकों पवित्र करैहूं ॥ १६ ॥ जे महांत निरभिमान मोविषें अनुरक्तचित्त शांत सब जीवनपर परमस्नेह संयुक्त निष्काम निष्किंचन हैं, जिन्हें मेरे विना और कछु इच्छा नहीं जिनको चित्त विषयनसौ पृथक् है ऐसे भक्त मोय प्रसन्न राखे हैं वेही निरपेक्ष हैवेके सुखको जानते हैं दूसरे नहीं ॥ १७॥ उत्तमभक्तनकी कथा रहो जे सामान्यहू मेरे भक्त हैं वेऊ कृतार्थ हैं जे मेरे भक्त विषयनसौ पीडित अजितेंद्रिय हैं विनकौहू दृढ भक्ति हैवेके कारण विषय पराभव नहीं कर सकें ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जैसे प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देयहै यही प्रकार मेरी दृढ भक्ति सब पापनको नाश कर देय है ॥ १९ ॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वा-
ध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥
भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भ-
क्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥
कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनाऽऽनन्दा-
श्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥

तातें भक्तिविना और कछु उपाय नहीं है, हे उद्धव ! योग सांख्य धर्म पाठ तप त्याग ये कोऊ मोको वश नहीं करि सकें जैसी एक दृढ-भक्ति मोको वश करै है ॥ २० ॥ भक्तनको प्रिय आत्मा रूपमें श्रद्धासों उत्पन्न भई भक्तिसोंही महात्मानकें वश हैजाउहूं मेरी भक्ति चांडालहू करै तौ वाके जाति दोष पवित्र है जाय हैं ॥ २१ ॥ सत्य और दया संयुक्त धर्म और तपसों संयुक्त विद्याहू वा पुरुषको पवित्र नहीं कर सकैहै जाके चित्तमें मेरी भक्ति नहींहै ॥ २२ ॥ जाके रोमांच न होइ, द्रवीभूत चित्त न होइ आनंदअश्रु न चलें, ताके

१ यापर एक दृष्टान्त है । तिलोक सुनार बडे साधुसेवी थे, जो कुछ वस्तु पास होती सब साधुसेवामें व्यय कर देते थे, एक समय राजाके यहांके कुछ भूषण बनने आये, सो इनके बहुत साधु आगये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजन सामग्री मंगाकर साधुओंको खवायदी और आप टाल वाल करते रहे, जब राजाके यहां व्याहका दिन आया, तौ यह जंगलको भाग गये भगवान्ने भक्तकी रक्षा करी और तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घरगये, वहांसे अच्छे भूषण बनानेके कारण बहुत कुछ पुरस्कार पाया और गहना लिया, भगवान् वोह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे घरको जा राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनतेही घर आय बडे प्रसन्न हुए ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ॥

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥२५॥ यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

भक्ति कैसे जानीजाइ और भक्तिविना हृदय कैसें शुद्ध होइ ॥ २३ ॥ अब भक्तिको लक्षण कहै है जाकी वाणी गद्गद होइ, चित्त द्रवीभूत कोमल होइ, नेत्रनतें वारंवार आंशू चले, कबहूं हँसे कबहूं लज्जा छोडि ऊंचे स्वरते गाने नाचे याभांति मेरी भक्तिसों युक्त होइ सो लोकनकों पवित्र करे ॥ २४ ॥ जैसे सोनो अग्निमें तपानैसो श्यामता छोड निर्मल हो अपने रूपको पावे है तैसे यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्म वासना त्यागकर मेरे रूपको पावै है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना अविद्या नहीं जायहै अविद्याके गये विना तुम नहीं मिलैहै सो कहै हैं यह पुरुष जैसें जैसें मेरी पुण्य कथा श्रवण कीर्तन करैं हैं तैसें तैसेंई चित्त शुद्ध होइ है नेत्र जैसें जैसें अंजनसो शुद्ध होयहैं तैसें तैसें सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आवै है ॥ २६॥ विषयके ध्यानतें मन विषयमें रहै है, मेरे ध्यानसो चित्त शुद्ध हैके मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाय है भाव यह है मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होयहै और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥ २७ ॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथान् ॥ हित्वा
मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥
स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥
न तथाऽस्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ॥ यो-
षित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ ३० ॥
उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदा-
त्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि
॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः
समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्व-
नासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

हे उद्धव ! तातें स्वप्न मनोरथकी समान मिथ्या वस्तुको ध्यान छोडि मेरी भावना करि चित्त शुद्ध करि मेरे स्वरूपमें राखे ॥ २८॥ स्त्रीनको संग स्त्रीसंगीनकों संग दूरितें छोडि, आत्माकों जानि धीर होइ एकांत बैठके परम कल्याणरूप मेरो चिंतवन करै ॥२९॥ जैसें स्त्रीके संगसो और स्त्रीसंगीनके संगतें याकों क्लेशबंध होइ तैसों औरके संगते नहींहोइ है ॥३०॥ उद्धव बोले हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहे सो तुह्मारो ध्यान कैसो करे, कौन स्वरूपको करे, यह मोसों कहो कारण कि मैं तो आपके दासभावके पुरुषार्थको प्राप्त है चुको हूं ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव ! समान आसन करै बैठे अपनी देह सम राखे जैसें सुख होइ तैसें बैठे, अपने दोनों हाथ गोदपर राखे,

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

नाशिकाके अग्रपर दृष्टि राखे ॥ ३२॥ ऐसें बैठि प्राणके मार्ग पूरक कुंभक रेचक करके शुद्ध होइ जितेंद्रिय होइ शनैः शनैः प्राणायामको अभ्यास करि रेचक पूरक कुंभक क्रमसौ अभ्यास करै चाहै तौ पूरक कुंभक रेचक या क्रमसौ प्राणायाम करै अथवा रेचक कुंभक पूरक या विपरीत क्रमसौ करै दोउ तरह प्रभुकी आज्ञा है ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारको है एक तो प्रणवसहित है, एक प्रणवरहित है यहां प्रणवसहित प्राणायाम करै, सो मूलाधार चक्रसौ ब्रह्मरंध्रतक कमलनालके तन्तुकी नांई सूक्ष्म अवच्छिन्न है वाको मनमें प्राणसौ प्रगट करके ॐकारमें घंटाके शब्दकी समान उदात्तनाद स्थित करैं॥३४॥

---

१ एक तौ यह प्रयोजन है कि जो आंखनको बिलकुल मींचैगो तो निद्रा आय जायगी और जो खुली राखैगो तौ मन चलायमान रहैगो यासौ नाकके अग्रभागको देखत रहै। अथवा लोकमें नाककीही बडी लाज होय है नेकसी कछु वात भई और हाई हमारी नाक कटजायगी ऐसें कहै है सो बात विचारे कि जो में कही अब भ्रष्ट भयौ तो मेरी नाक कट जायगी क्योंकि अब मेरी योगिनमें गिनती हैगई है यासूं भगवानने हू कही है कि नाककेमाउ देखत रहै जैसे नाक रहै सो करै ऐसो न करै जासो नाक जाति रहै ॥ २ नाकके दहिने नथुनाको दहिने हाथके अंगूठासों दावके श्वासको ऊपर खेचवेको नाम पूरक कहैहै फिर मध्यतर्जनी दोनों अंगुलीनके विन अनामिका कनिष्ठिका दोनों अंगुलीनसो नाकके वायें नथुनाको बंद करके जितने देर वायु रुक सके वितनी देर वायुको रोके वाकू कुंभक कहै है फिर दहिने नथुनाके मार्गसो अंगूठाको हटायके धीरे २ पवनको निकासे एकदमसौ न निकासै याको रेचक कहै है यह प्राणायाम कहावे है सो करै ॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्॥ दशकृत्वस्त्रि-
षवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥ हृत्पुण्डरीकम-
न्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्नि-
द्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत्
सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममै-
तद्ध्यानमङ्गलम् ॥ ३७॥ समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घ-
चारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचि-
स्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकु-
ण्डलम्॥हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम्॥३९

या प्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणको अभ्यास कारि प्रगट करै और प्रणवमें घटामनो वढामनो संधानकों स्थित अभ्यास करै दश प्राणायाम तीनों काल करे या प्रकार अभ्यास करवेसौ एक महीनामें प्राणवायु वशमें होंजाय है ॥ ३५ ॥ या देहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है डांडी वाकी ऊपर रहैं है जैसें केराकी फरी होय हैं, तैसी कमलकी कली है ताको ध्यान ऐसो करै कि वह नीचें नालवारो और ऊपर मुखवारो खिलौहु भयौ आठ पखुरीसौ युक्त है कर्णिकासहित मनमें चिंतवन करै ॥ ३६ ॥ वामें सूर्य चंद्र और अग्निकौ क्रमसौ ध्यान करै वामें प्रथम अग्निके बीचमें आगे कहे ध्यानके मंगलविषयरूप मेरे स्वरूपकौ ध्यान करनौ ॥ ३७ ॥ सम अतिशांत सुंदरमुख दीर्घ सुंदर चारिभुजा धारण करे, अति सुंदर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्ज्वल मंद मुसिक्यानि युक्त ॥ ३८ ॥ समान काननमें प्रकाशमान मकराकृत कुंडल धारे पीतांबर धरे मेघकीसी भांति श्यामसुंदर श्रीवत्ससंयुक्त लक्ष्मीको वक्षःस्थलमें धरे ॥ ३९॥

शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥नूपुरैर्विलस-त्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥४०॥ द्युमत्किरीटकट-ककटिसूत्राङ्गदाऽऽयुतम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसा-दसुमुखेक्षणम् ॥ ४१॥ सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गे-षु मनो दधत् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽ-कृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावये-न्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चि-न्तयेत् ॥ ४४ ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासौं भूषित नूपुरनसौं शोभित चरण-कमल कौस्तुभमणिकी कांतिकरि संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभासौं दीप्त मुकुट कंकण कटि मेखला बाजूबंद धारे सर्वांग सुंदर मनोहर प्रसन्नताके कारण अति सुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपको ध्यान करै सब अंगनमें मन देई ॥ ४१ ॥ प्रथम इंद्रियनकों विषयतें खेंचि मनमें मिलावे, मनको बुद्धि सारथी करि विषयनतें काढि मेरे स्वरूपमें मिलावे ॥ ४२ ॥ यह चित्त सर्वत्र व्याप्त है अंग अंगमें फिरे हैं, ताको विन २ अंगनते काढि मेरे मुखकी भावनामें राखे मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखको बहुत काल चिंतवन करे और कुछ मनमें न धारै ॥४३॥ जब मुखमें मन स्थिर हैजाय तब मुखहूंते खेंचकर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें राखे फिर वाकों वहांते छुडाइ साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे संपूर्ण स्वरूपमें संलग्न होई तब और कछु चिंतवन न करे ॥ ४४ ॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥ विचष्टे
मयि सर्वात्मञ्ज्योतिज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥
ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥ संया-
स्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥ इति
श्रीभागवत एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतु-
र्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

या प्रकार समाधिमें दृढ मति होइ, अपने आत्मामें आत्मरूप मोहीकूं देखे, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिलि जाइ तैसें सर्वात्मरूप मेरे रूपमें आपनो आत्माकों मिलो देखे ॥४५॥ या प्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यान करि योगी मो विषें मन संयुक्त करे, तब वह द्रव्य ज्ञान क्रिया-रूप भ्रम शीघ्रही निवृत्त हैवेंसो शांतिकों प्राप्त होय है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

१ ऊधो क्रोध लोभ अरु काम॥इनसे बचै सोई ज्ञानी नर और एक माया वाम॥ जप तप नियम समाधी व्रतको देत न यह रिपु ठाम ॥ इन तीनोंको तज सुख पावे भज मोहिं आठौं जाम ॥ धन दारा सुत अटा अटारी नगर धरणि पुर ग्राम ॥ यह सारे मायासे भासत त्याग जपो मम नाम ॥ बस ज्वालाप्रसाद यही एक तारैंगे सुखधाम ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच ॥ जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणायोगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥३॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

पंद्रहके अध्यायमें जे धारणासहित सिद्धि सब कही वे सिद्धि भगवान्की प्राप्तिको अंतराय है, तातें इनको छोडि परमेश्वरसो तत्पर होइ सो कहें हैं ॥ श्रीभगवान् बोले कि जो जितेंद्रिय होई श्वास जीते चित्त मेरे विषे राखै होई योगी होइ, स्थिरचित्त होइ ताकों ये सिद्धि अपने आप विनाही चाहें प्राप्त होय हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले हे श्रीकृष्ण ! कैसी धारणसौ ये सिद्धि होय हैं, सिद्धि कितनी हैं इनको रूप कहाहै, सो सब मोसो कहो, क्यौंकि तुम योगीनहूको सिद्धिके दाता हो ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले धारणा और योगके पारंगतनने अठारह सिद्धि कही हैं, तामें आठ मेरे आश्रय रहें हैं, ते मोहीकों होयँहै कि, तथा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त होइहै वाकों होय हैं, पर कछु न्यून होयहैं और दश सिद्धि गुणनको कार्य्य है सतोगुणको उत्कर्ष बढामें हैं ॥ ३ ॥ तिन्कूं कहे हैं अणिमा महिमा लघिमा ये तीन्यो

१ बडे शरीरको छोटा वना लेना अणिमा छोटेको बडा बना लेना महिमा, भारी शरीरको हलका बना लेना लघिमा सिद्धि है ॥

गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे
सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनु-
र्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः
कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥ स्वच्छन्दमृत्युर्दे-
वानां सहक्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासंकल्पसंसिद्धिरा-
ज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं
परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रति-
ष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥

देहकी सिद्धि हैं प्राप्ति सिद्धि इंद्रियनकी है इंद्रियनसों मिलि इंद्रिय-
नके देवतानसो संग होनो परलोक और या लोकके विषयनके भोग
देखवेकी सामर्थ्य तथा भूमिके गुप्त पदार्थनको ज्ञान होनो प्राकाश्य
सिद्धि है ईश्वरमें मायाकी और दूसरेनमें मायाके अंशनकी प्रेरणा
करवेको सामर्थ्यको ईशितासिद्धि कहे हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग होई
विषयभोग करें और संग दोष न लगे सो वशिता सिद्धि कहिये,
जाको कामना करे ताकों पावे यह प्राकाम्य सिद्धि है हे उद्धव ! ये
आठ सिद्धि मेरे आश्रय रहैहैं ॥ ५॥ क्षुधा पिपासा आदि धर्म शरी-
रमें न व्यापै यह अनूर्मि सिद्धि है दूरिकी वस्तु सुने और देखे ए
सिद्धि दोई सिद्धि हैं,मनके वेगकरि देहकी गति होइ यह मनोवेग
नाम है जैसो रूप कियो चाहैं तैसो होइ यह कामरूप सिद्धि हैं,
परकाया प्रवेश करे एक यह सिद्धि हैं ॥ ६ ॥ स्वेच्छामृत्यु होइ यह
एक सिद्धि है अप्सरानके संग देवताहै के क्रीडा करै हैं तिनको देख-
बेकी सिद्धि है जो मनमें चाहे सो पावे अप्रतिहत गति होइ और
आज्ञाभंग न होइ यह दश सिद्धि सतोगुणकी वृद्धिसो मिलती है
॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं ते कहे हैं त्रिकालको ज्ञान होइ १ शीत,

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया
धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥९॥ भू-
तसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः॥ अणिमा-
नमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥१०॥ महत्यात्म-
न्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवा-
प्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये
चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन्॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी
लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे
मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्रा-
प्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

उष्ण, कछु न लगे २ पराये चित्तको धर्म जानें ३ अग्नि, सूर्य, जल, विषकों रोकेः इनको दोष होने न देइ ४ पराजय कहूं न होई ५ ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! ये सब योग धारणाकी सिद्धि मात्र कही अब ज्ञान धारणाते जो सिद्धि होइ और जैसे होई सो मोते सुनो ॥ ९ ॥ मनको भूत सूक्ष्म अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध सूक्ष्म तन्मात्राके आकार करके या भूत सूक्ष्म उपाधिमान मेरे स्वरूपमें धारण कर- वैसो सूक्ष्म रूपको उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होय है ॥ १०॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्तत्त्वरूप मन धरे तो महिमा सिद्धि पावे और न्यारे न्यारे आकाश आदि भूतनहीकी रूपमें मन धरे तो भूतनकीमहिमा सिद्धि पावे ॥ ११ ॥ पंचभूतनके परमाणु अतिसूक्ष्म हैं सो मेरो रूप है तामें चित्त अनुरक्त करे तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्ति होइ, सो लघिमा सिद्धि कहिये ॥१२॥ सात्विक अहंकारतत्वरूप मोविषे एकाग्र मन धरे तो सब इंद्रियनको अधिष्ठाता होइ मोमेंही मन राखवेके प्रभावसों यह प्राप्ति सिद्धि

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥१४॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ॥ परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन्॥तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ १९

होयहै ॥१३॥ प्रकृतिते क्रियाशक्तिरूप महत्त्व होयहै,सो रूप है तामें मन धरे तब सबते उत्तम मायाते उपजे प्रकामको पावे सो प्राकाम्य सिद्धि कहिये ॥ १४ ॥ त्रिगुणमायाके नियंता अंतर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन धरे तो सब जीव और चर अचर शरीरकों नियंता होइ सो ईशिता सिद्धिकों पावे ॥ १५ ॥ विराट् हिरण्यगर्भ और कारणते चौथे तुरीयब्रह्म भगवान् नारायणमें मन धरैं तो योगी मेरे धर्मकों पावें, तब वशितासिद्धिकों पावे ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्मके विषें निर्मल मन राखे तौ परमानंद पावे, जहां सब कामना समाप्त होयहै ॥ १७ ॥ अब गुण हेतु सिद्धि कहैं हैं, श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन धरे तो मनुष्य शुद्धताकों प्राप्तहोइ वासों क्षुधा प्यास आदि ले जे छैः ऊर्मी लहरी है वे नहीं व्यापें है ॥ १८ ॥ आकाशरूप प्राण हैं सो मेरो रूप है, तामें मनकरिकें शब्दको चित-

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत् तनुम् ॥ २४ ॥

वन करे तब वह आकाशमें भूतनकी वाणी प्रगट दूरिहीतें सुने है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावे मन कारिकैं मेरो ध्यान धरे; तब सूक्ष्म दृष्टिहोइ, दूरिते विश्वकों देखे ॥ २० ॥ मन वायुके संग देहको मेरे विषें संयुक्त कारिकैं जो मेरी धारणा करे तौ या धारणाकें प्रतापसो जहां मन करे तहां देह जाई ॥ २१ ॥ जब मन मेरे विषें मनकी धारणाकरि धरे तब मेरे प्रभावकरि जैसो रूप कियो चाहैं हैं तैसो रूप करे, कारण कि विन्हैं मेरे योगबलको आश्रय है ॥ २२ ॥ जो सिद्ध परकायामें प्रवेश कियो चाहैं सो आत्माकों चिंतवन करे, तब अपनी देह छोडि प्राणरूप होइ बाहिरकी वायुमें प्रविष्ट होइ वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होयहैं जैसें भ्रमर पुष्पतें दूसरे पुष्पमें अनायास चले जायहैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छंद मृत्युको प्रकार कहैं हैं, योगधारणा करते प्रथम एडीसों गुदद्वार दाबकर रोके पीछें प्राणको हृदयमें लेआवे. पीछें हृदयमें उर वक्षःस्थलमें मिलावे, पीछें कंठमें ले आवे कंठते माथेमें लावे, तब ब्रह्मरंध्र द्वारा या देहको छोडे

छ
ही
व
को

विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ वि-
मानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा
संकल्पयेत् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि
सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो
वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न
विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या
शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालि-
की बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न
हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रान्तचित्तस्य
यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥

ना स्थानमें जायो चाहै तहां जाइ ॥ २४ ॥ जब देवतानके क्रीडास्थ-
लमें विहार कियो चाहें तब मेरे सतोगुणरूपी मूर्तिको ध्यान धरे, तब
सतोगुणके अंशते तहांई विमान समेत देवांगना आइ ठाड़ी होयहैं
॥ २५ ॥ पुरुष मोविषें विश्वासकरि बुद्धिसो मनोरथ करे तब सत्य
संकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्तकर तैसोही मनोरथ पावे है ॥ २६ ॥
मैं सबनको ईश्वर नियंता हौं, स्वतंत्र हौं, मेरे भावकों प्राप्तभयो पुरुष
कहूं प्रतिहत नहीं होयहै जैसे मेरी आज्ञा सब मानेंहै तैसै वाहूकी
आज्ञा सब मानें उल्लंघन न करिसके, ये सब गुणहेतु सिद्धि कही
॥ २७ ॥ अब तुच्छ सिद्धि कहैं हैं मेरीभक्ति करि शुद्ध सत्वरूपमय
होइ योगी त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर मेरी धारणा करे, तब जन्म मृत्यु
सहित तीनों कालको ज्ञान होइ और यही दूसरेके चित्तकी सब बात
जानी जायहै ॥ २८ ॥ मेरे योग करिकैं जाको चित्त युक्त होइ ताकी
देह योगमय होइ सो अग्नि करकें और अनेक उपाधिसो उपहत नहीं

मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्सास्त्रविभूषिताः॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः॥ ३०॥उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः॥ ३१ ॥जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४॥

होइहै जैसें जलजंतुको जल बाधा नहीं करैहै तैसें याकों कोई बाधा नहीं करिसकैहै ॥ २९ ॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र चमर युक्त मेरी विभूति अवतारको ध्यान करे तब याको पराजय कबहू न होई ॥ ३० ॥ या प्रकार मेरी उपासना कर तब मेरी योगधारणा करवेसौं पहलै कही सब सिद्धि वाके आगे हाथ जोरें ठाढी रहैं हैं ॥ ३१ ॥ अनेक भांतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं याते एकही धारणा ऐसी करे जाते सब सिद्धि होइ सो कहैं हैं जितेंद्रिय दांत जितश्वास हो मन जीत तुरीय ब्रह्म नारायण स्वरूपमें मेरी धारणा धरनवारे गुणिनको कौन सिद्धि दुर्लभ है ॥ ३२ ॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करैं हैं ताकों मेरी प्रीतिमें ये सिद्धि विघ्न करैहै तातें इन सिद्धिनसों व्यर्थ काल न खोवे इन सिद्धिनको न चाहना करे ॥३३॥ एक सिद्धि जन्महीतें होयहै जैसे देवतानको सिद्धि समेतही जन्म होयहै सहजही सिद्धिहै एक मंत्रकारि औषधी कारि तपकारि जितनी सिद्धि होयहै वे सब सिद्धि योगकारि पावे पर इन करिके सालोक्यादिक मुक्तिको

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं यो-
गस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम्॥३५ ॥ अह-
मात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भू-
तानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्री-
मद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसं-
वादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

उद्धव उवाच॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृत-
म् ॥ सर्वेषामपि भावानां प्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥१॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः॥ उपासते त्वां
भगवन् यथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

नहीं पावेहै ॥ ३४ ॥ यातें हे उद्धव ! सब सिद्धिनको एक मैंही प्रभु हूं कारण पालक हों मैं मोक्ष सांख्य ज्ञान धर्म और ब्रह्मके ज्ञातानको पालक हों ॥ ३५ ॥ मैं सब देही जीवनको आत्मा हों अंतर्यामी हों सर्वत्र व्यापक हों जैसे भूतनमें महाभूत सर्वत्र व्याप्तहै और आवरणरहित है याकों ऐसैही जानो ॥ ३६ ॥
इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एका० पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अब सोलहें अध्यायमें प्रकटतासंयुक्त हरिकी विभूतिज्ञान वीर्य प्रभाव सहित विशेष करिकै कहैंगे उद्धव बोले हे श्रीकृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावरण हो स्वतंत्र हो जिनमें सब भूत मात्रकी उत्पत्ति प्रलय रक्षा जीवन होयहै, ते तुम हो सबके कारण हो, आदि अंतसों रहित हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जे वेदके तत्वको ज़ाने हैं वे

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपा-
सीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥३॥ गूढश्चर-
सि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यन्ति
भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४॥ याः काश्च भूमौ
दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते॥ ता मह्य-
माख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम्
॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्न-
विदां वर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥६॥
ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो
निवृत्तो हन्ताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः॥ ७॥

सर्वत्र ऊंचे नीचे पदार्थनमें कारणरूप तुमको जानि तुह्मारी उपासना करेहै ॥ २ ॥ जे आत्मतत्व नहीं जाने हैं तुम तिनकों जानिवेकों अशक्य हौ जिन जिन भावनाविषे ऋषीश्वर भक्ति करिकैं तुमकों उपासना करते सिद्धिकों पावेहै मोको विन पदार्थनके नाम कहो ॥ ३ ॥ सब प्राणीनिंके मध्यमें गुप्त तुम अंतर्यामी हो, प्राणीनको कार्य कारण सामर्थ्यके दाता तुह्मे सब भूत तुह्मारी माया करिकै मोहित-होइ नहीं देखैहै ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहोहो तिन विभूतिनको पूछेहै, हे महाविभूतिके पति! जे तुह्मारी विभूति भूमिसों स्वर्ग पाताल दिशानमें निश्चय करिहै, और जे विभूति तुह्मारे प्रताप संयुक्त हैं ते मोसूं कहो तुह्मारे तीर्थरूप चरणारविंदनको नमस्कार करोंहों ॥ ५ ॥ याप्रकार उद्धवको प्रश्न सुनिके संतुष्ट होई श्रीकृष्ण बोले हे प्रश्नके ज्ञातानमें श्रेष्ठ! याही भांति शत्रुनसों युद्ध करवेकी इच्छावारे अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें मोसों प्रश्न कियोहो ॥ ६ ॥ कदाचित् कहो युद्धके समयमें या प्रश्नको कौन प्रसंग हो तापै कहे है

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अ-
भ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥८॥ अहमा-
त्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि
भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः॥ ९ ॥ अहं गतिर्ग-
तिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं
साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥१०॥ गुणिनामप्यहं
सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो
दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां म-
न्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि
च्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥

राज्यके निमित्त अपने जातिवारेनके वधको करनो अनुचित अति-निन्दित और अधर्म रूप जानके कि मैं इन्हें मारूंगो यह मरैंगे यासों करुणा व्याप्त बुद्धि हैवेसों पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करवेसों निवृत्त हैके स्थितभयो ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्ति करिकें पुरुषसिंह अर्जुनको समझायो तब यही प्रश्न रणभूमिमें कियोहो अब तुमहूं तैसेंई पूछोहो मैं तुमहूंसो वही कहूंगो ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! इन प्राणि-मात्रको आत्मा मैं हों सुहृद मित्र ईश्वर नियंता मैं हों और सब प्राणिमात्रहू मैं हों सबको जन्म पालन प्रलयको कर्ताहू मैं हों ॥ ९ ॥ मतिमंत जे चलैं फिरैं हैं तिनहूंको योग मन कर्म मैं हों जे सबकों वश करै है तिनमें मेरो रूप है अनंतगुण है तिनमें समता गुण मेरो रूप है गुणसंयुक्त पुरुषको स्वाभाविक गुण मैं हूं ॥ १० ॥ गुणीनको प्रथम कार्य्य हों जे वडे पदार्थ हैं तिनमें महत्तम मैं हो सूक्ष्मनमें प्रथम जीव मैं हो दुर्जयोंमें मन मैं हो ॥ ११ ॥ देवनको अध्यापक मैं हो मंत्रनमें

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट्॥ आदि-
त्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः॥ १३॥ ब्रह्म-
र्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः॥ देवर्षीणां नारदो-
ऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु॥ १४॥ सिद्धेश्वराणां कपि-
लः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं
पितॄणामहमर्यमा॥ १५॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां
प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्ष-
रक्षसाम् ॥ १६॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं
प्रभुम्॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम्
॥ १७॥ उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चन-
म्॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः॥ १८॥
नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ॥
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ॥ १९॥

प्रणव मैं हो अक्षरनमें अकार मैं हो छंदनमें गायत्री मैं हो॥ १२॥
सब देवतानमें इन्द्र मैं हो आदित्यनमें विष्णु मैं हो रुद्रनमें नीललो-
हित मैं हो॥ १३॥ ब्रह्मऋषिनमें भृगु मैं हो, राजऋषिनमें मनु मैं हो,
देवऋषिनमें नारद मैं हो, धेनुनमें कामधेनु मैं हो॥ १४॥ सिद्धेश्व-
रनमें कपिलदेव मैं हो, पक्षीनमें गरुड मैं हो, प्रजापतिनमें दक्षप्रजा-
पति मैं हो, पितरनमें अर्यमा मैं हो॥ १५॥ हे उद्धव! दैत्यनमें
दैत्यनको राजा प्रह्लाद मैंहो, नक्षत्र औषधीनको पति प्रभु चंद्रमा मैं
हो, यक्ष राक्षसनको प्रभु कुबेर मैंई हूं ॥ १६॥ गजेद्रनमें ऐरावत,
जलजंतुनमें प्रभुवरुण, प्रतापवंतनमें दीप्तमंतनमें सूर्य्य, मनुष्यनमें
नराधिप राजा मैं हो॥ १७॥ घोडानमें उच्चैःश्रवा, धातुनमें सुवर्ण,
दंडकर्त्तानमें यम, सर्पनमें वासुकी मैं हो॥ १८॥ नागेंद्रनमे अनंत

तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥२०॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥२१॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥२२॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥२३॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

शेषनाग मैं हो, शृंगीनमें और डाढवारेनमें प्रभु सिंह मैंहो, आश्रमनमे संन्यास मैहो, हे निष्पाप! वर्णनमे ब्राह्मणमैहो ॥ १९ ॥ तीर्थनमे और प्रवाहनमे गंगा मैहो, स्थिर जलनमे समुद्र मैंहुं, आयुधनमे धनुष मैहूं, धनुषधारीनमे त्रिपुरके घाती महारुद्र मैहो ॥ २० ॥ निवासस्थानमे सुमेरु, दुर्गम स्थलनमे हिमालय, वनस्पतीनमें अश्वस्थ औषधिनमें जव मैंहों ॥ २१ ॥ पुरोहितनमें वशिष्ठ, वेदार्थज्ञातानमें बृहस्पति मैंहों, सेनापतिनमें स्वामिकार्तिकेय, उत्तम मार्ग प्रवर्तकमें ब्रह्मा मैंहों ॥ २२ ॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञ व्रतमें हिंसारहित व्रत मैंहों, शोधकनमें वायु अग्नि सूर्य जल वाणी रूप शोधक मैहों, ये स[illegible] पवित्रकारी है ॥२३ ॥ योगीनमें समाधि मैंहो जयको चाहेहै तिन[illegible] नीति मोहीकू जानि, विवेकीनमें आत्मा अनात्माके विवेककारी विद्या मेरो रूप है पांच प्रकारके ख्यातिवादी है तिनमें यह यों होयहै अथवा योंहै ऐसो विकल्प मैंहीहो ॥ २४ ॥

हैं जिनको केवल एक वार पढ जान मात्रसे मनुष्य हरेक तरहके लौकिक विषयमें निपुण हो जाता है। आजतक इस ग्रन्थके मधुर रसको केवल संस्कृतज्ञ पण्डितही चाखते थे अब मुरादाबादनिवासी विद्वद्वर व्रजरत्नभट्टाचार्यजीने इस ग्रन्थके ऊपर सरल और सुबोध भाषाटीका बनाके सर्व साधारणका वास्तवमें विशेष उपकार किया है। उपरोक्त पण्डितजीके बनाये हुए भाषानुवादकी उत्तमताके विषयमें संप्रति हमें कुछभी प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि शिक्षित समाजके सभ्योंमें वालकोंसे लेकर वृद्धपर्यन्त कोई व्यक्ति ऐसा न होगा जो पण्डितजीकी लेखप्रणालीको न जानता हो। मूल्य २ रु०।

हरिवंश भाषाटीका.

हमारे पाठकोंमें वहुत कम ऐसे महाशय होंगे जिन्होंने उपरोक्त पुराणका नाम नहीं सुना हो यद्यपि यह पुराण महाभारतके अन्तर्गत है तथापि इसकी गणना पृथक् की जाती है। इस विराट् ग्रन्थमें किन २ पवित्र कथाओंका वर्णन है इस बातकी मीमांसा करनेका हमको अवसर नहीं, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि इसके पाठसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ हस्तगत हो जाते हैं। ब्रह्महत्यादिक महापातकोंका नाश हो जाता है। भक्ति श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करनेसे निःसन्देह संतानकी प्राप्ति होती है। इस बातको हमारे पाठक भली भांति जानते होंगे कि, जिन मन्दभागियोंके भागमें विधाताने सन्तान होनेके अक्षर नहीं लिखे उनके एक वार सच्चे चित्तसे इसका अवश्यमेव पाठ करनेसे सन्तान होती है विशेष क्या कहें जिस कामनासे इसका पाठ किया जाय अवश्यही उसकी पूर्ति होती है। यह तीन प्रकारसे छपके तय्यार १-संस्कृत टीकासह की० ५ रु०। २-पं० ज्वालाप्रसादजीकृतभाषाटीकासह की० १० रु०। ३-केवल भाषा। अध्यायके आदि अन्तको श्लोक लिखकर शेष श्लोकोंकी मूलांकसहित सुन्दर भाषा लिखी गई है। भाषा ऐसी कमनीय और मधुर बनी है कि, एकवार थोडासाभी पाठ करनेसे विना परिपूर्ण किये छोडनेको चित्त नहीं चाहता। विलायती कपडेकी सुनहरी जिल्द बंधी मूल्य ५ रु०। चाहिये वैसा नमुना मंगालो.

षडङ्ग (रुद्राष्टाध्यायी) भाषाटीका।

जो व्यक्ति हिन्दु होनेका अभिमान रखते हैं वे रुद्रीको भलीभांती जानते हैं इसमें वैदिक मन्त्रोंसे भगवान् भूतनाथकी पूजा और उपासना लिखी गई है। इसका केवल पाठ मात्र करनेसे मनुष्यको किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती, हमने सर्व साधारणके उपकारार्थ मुरादाबादके पण्डित व्रजरत्न भट्टाचार्यजीसे अत्यन्त कमनीय और सरल भाषाटीका वनवाकर खूब बडे २ सुवाच्य अक्षरोंमें मूल और भाषानुवाद छापके प्रसिद्ध किया प्रत्येक मन्त्रके नीचे स्वरोंके चिन्ह ऐसी सरलतासे लिखे जिन्हें सब कोई समझ सक्ते हैं। मूल्य १० आना।

श्रीमद्भागवत.

(व्याख्याग्रन्थसंख्या ७००००)

यह टीका बूंदी महाराजाश्रित पं० गंगासहायजीने बनाई है. इसमें मल्लिनाथके ढंगपर अन्वयक्रमसे सरल और कठिन सब श्लोकोंका अर्थ सुगमरूपसे लिखा है और टीकामें जिन जिन बातोंका लिखना आवश्यक है वे सब संक्षेप और सुगमतासे लिख दी हैं इसमें श्रीधरजीकी टीकाकी तो प्रायः सब बात आगई और बहुतसी बातें तोषिणीसारार्थसंदर्शिनी आदिसेभी लीगई है और सुगमता अन्वयक्रम और संक्षेपपर पूरी दृष्टि रक्खी गई है इस टीकाके शेषमें भागवतोपयोगी वेदांत सांख्यादिक कितनेक मत सुगम रीतिसे लिख दिये हैं. इसमें किसी मतका पक्षपात अथवा खंडन नहीं किया गया है । सब मतोंके आचार्योंका आदरपूर्वक स्मरण किया गया है. और भागवतके स्कंध और प्रकरणोंका अभिप्राय और श्लोकोंके छन्द तथा अध्यायोंके श्लोकोंकी गणना लिख दी है औरभी बहुत बातें हैं. इसका मूल्य अत्यल्प केवल १२ रुपये. देखनेसे मालूम होगा. पुस्तक समग्र छप चुका. नमूना मंगालो. काशिआदि ठिकानेके विद्वानोंकी शेंकडो सम्मति आई हैं.

अन्वितार्थप्रकाशिकाख्यव्याख्यासहिता

दशमस्कन्ध अलगभी मिलता है की० ४ रु० ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, कल्याण–मुंबई.

Gangavishnu Shrikrishnadas.

Laxmi-Venkateshwar Press.

KALYAN G. I. P. RY. JUNCTION.

BOMBAY PRESIDENCY.

र्थानां स्रो

मे

जवे

हों,

। २२

यु

२

ने,

विक